* ॐ श्रीपरमात्मने नमः *

कल्याण

मूल्य १० रुपये

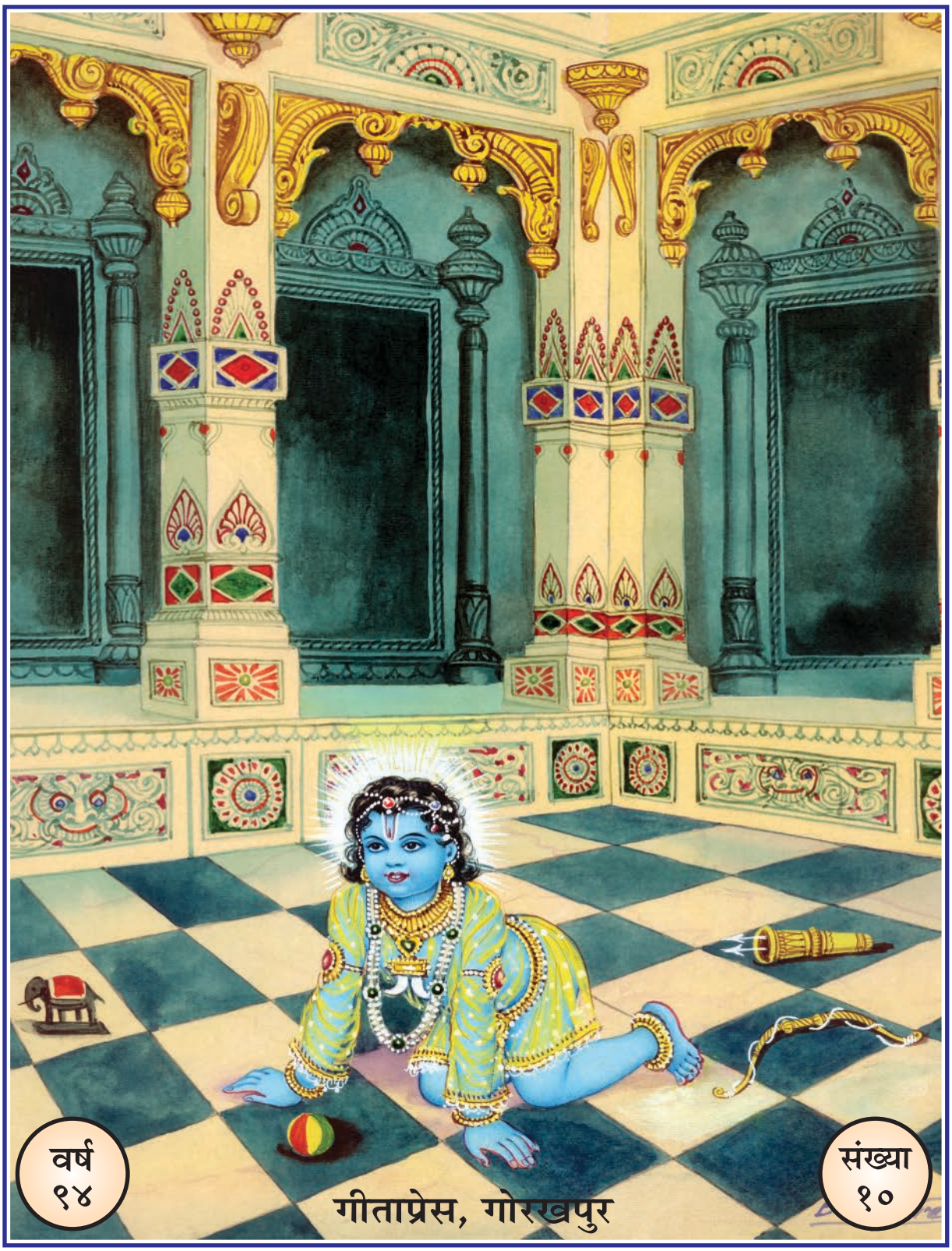

श्रीरामकी बालछवि

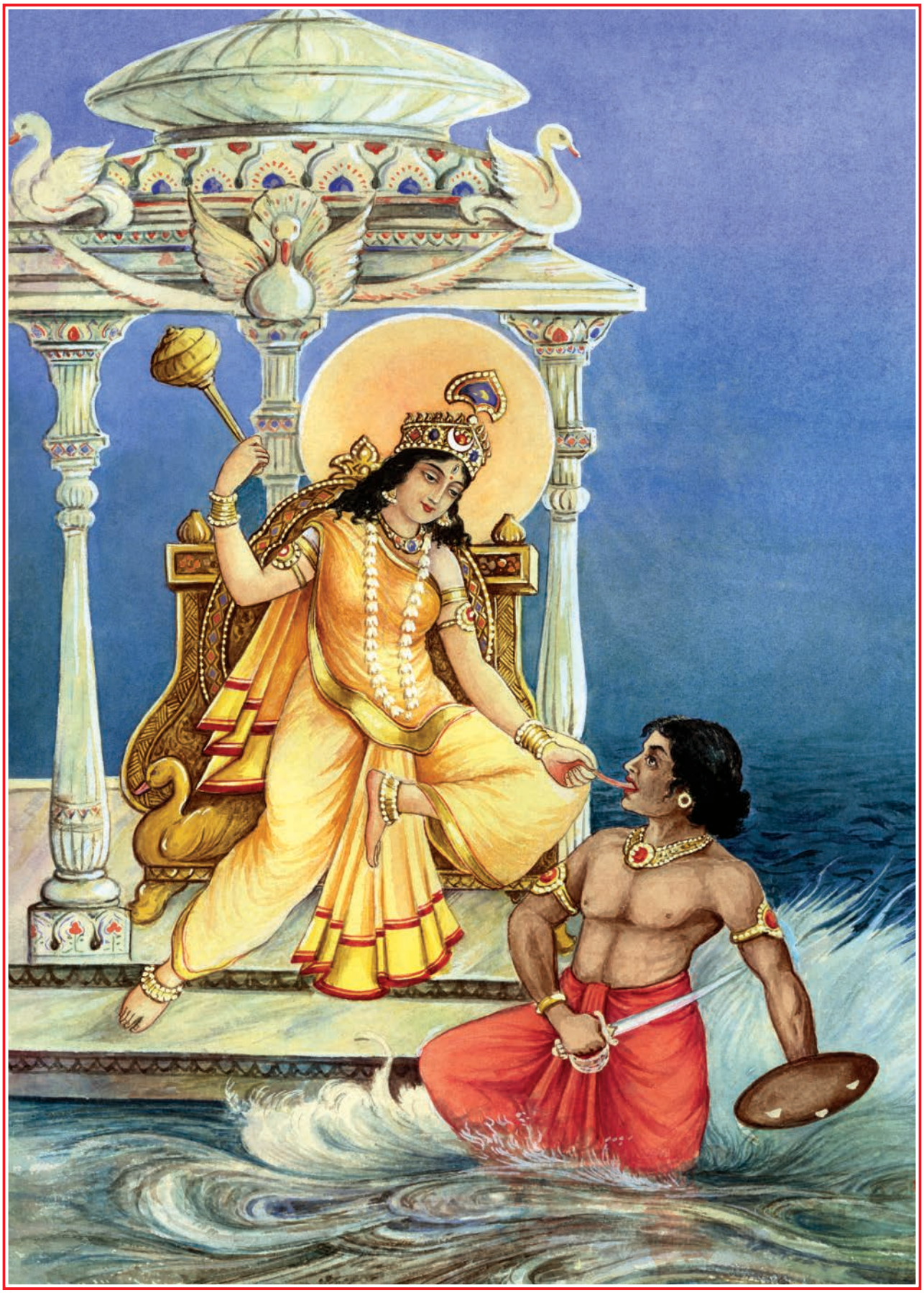

भगवती बगलामुखी

ॐ पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥

आख्यानकानि भुवि यानि कथाश्च या या यद्यत्प्रमेयमुचितं परिपेलवं वा।
दृष्टान्तदृष्टिकथनेन तदेति साधो प्राकाश्यमाशु भुवनं सितरश्मिनेव॥

वर्ष ९४ | गोरखपुर, सौर कार्तिक, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, अक्टूबर २०२० ई० | संख्या १०

पूर्ण संख्या ११२७

भगवती बगलामुखीका ध्यान

मध्ये सुधाब्धिमणिमण्डपरत्नवेद्यां सिंहासनोपरिगतां परिपीतवर्णाम् ।
पीताम्बराभरणमाल्यविभूषिताङ्गीं देवीं भजामि धृतमुद्गरवैरिजिह्वाम्॥
जिह्वाग्रमादाय करेण देवीं वामेन शत्रून् परिपीडयन्तीम्।
गदाभिघातेन च दक्षिणेन पीताम्बराढ्यां द्विभुजां नमामि॥

'सुधासमुद्रके मध्यभागमें एक मणिमय मण्डप है। उस मण्डपमें रत्नमयी वेदी है। उस वेदीपर स्वर्णमय सिंहासन सुशोभित है। उस सिंहासनपर देवी बगलामुखी विराजमान हैं। उनकी अङ्गकान्ति पीले रंगकी है। उनका अङ्ग-प्रत्यङ्ग रेशमी पीताम्बर, पीले रंगके आभूषण तथा पीत पुष्पोंकी मालाओंसे अलंकृत है। देवीके एक हाथमें मुद्गर और दूसरेमें शत्रुकी जिह्वा है। ऐसी भक्तवत्सला देवीका मैं भजन करता हूँ। देवी अपने बायें हाथसे शत्रुओंकी जिह्वाका अग्रभाग पकड़कर दाहिने हाथकी गदाके प्रहारसे उन्हें पीड़ित कर रही हैं। ऐसी पीताम्बरधारिणी तथा दो भुजाओंसे सुशोभित बगलामुखी देवीको मैं नमस्कार करता हूँ।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे। हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

(संस्करण २,००,०००)

कल्याण, सौर कार्तिक, वि० सं० २०७७, श्रीकृष्ण-सं० ५२४६, अक्टूबर २०२० ई०

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ-संख्या
१- भगवती बगलामुखीका ध्यान	३
२- कल्याण	५
३- भगवान् श्रीरामकी बालछवि **[आवरणचित्र-परिचय]**	६
४- भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाले उत्तम गुण और आचरण (ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)	७
५- धन और सुख (प्रो० श्रीरामचरण महेन्द्रजी, एम०ए०)	९
६- गोपी-हृदयमें प्रेमसमुद्र (नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)	१३
७- ममता (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती, सिहोरवाले)	१४
८- अनुभूतिमें बाधा—सुखलोलुपता **[साधकोंके प्रति]** (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)	१८
९- श्रीराधा-कृष्ण-महारास-लीलाकी साक्षी 'शरत्पूर्णिमा' (श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)	२०
१०- श्रीरामचरितमानसमें संग-प्रभाव (डॉ० श्रीफूलचन्द प्रसादजी गुप्त, सम्पादक 'योगवाणी')	२३
११- आयुर्वेदके अनुसार स्वास्थ्यका शत्रु है क्रोध (प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़)	२६
१२- केरलस्थित जटायुतीर्थ—जटायुमंगलम् **[तीर्थ-दर्शन]** (प्रो० श्रीलम्बोधरनजी पिल्लै बी०)	२८
१३- धर्मरथ (श्रीभगवतदास राघवदासजी महाराज)	३१
१४- गुजरातके सन्त श्रीडायाराम बाबा **[सन्त-चरित]** (श्रीरतिभाईजी पुरोहित)	३३
१५- सुखभोगकी इच्छाओंके नाशका उपाय (ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)	३५
१६- विज्ञानकी कसौटीपर गोदुग्ध और गोघृत **[गो-चिन्तन]** (श्रीबरजोरसिंहजी)	३६
१७- **साधनोपयोगी पत्र—**	
(१) भगवान्‌की नासमझी नहीं, उनकी उदारता और करुणा..	३८
(२) सद्‌गुरुका महत्त्व	३८
(३) चमत्कारसे सावधान रहिये	३९
१८- **व्रतोत्सव-पर्व** [कार्तिकमासके व्रत-पर्व]	४०
१९- श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना	४१
२०- श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना	४४
२१- **कृपानुभूति—** लंगूरपर शिवकृपा	४६
२२- **पढ़ो, समझो और करो—**	
(१) अनजान सहयात्रीकी सद्भावना	४७
(२) किसको क्या मिला!	४८
(३) सच्चा प्रायश्चित्त	४८
२३- **मनन करने योग्य—** सच्ची निष्ठा	५०

चित्र-सूची

१- श्रीरामकी बालछवि	(रंगीन)	आवरण-पृष्ठ
२- भगवती बगलामुखी.	(")	मुख-पृष्ठ
३- श्रीरामकी बालछवि	(इकरंगा)	६
४- जटायुमंगलम् तीर्थ	(इकरंगा)	२८
५- सन्त श्रीडायाराम बाबा	(")	३३
६- भक्त बल्लालपर गणेशजीकी कृपा	(")	५०

जय पावक रवि चन्द्र जयति जय। सत्-चित्-आनँद भूमा जय जय॥
जय जय विश्वरूप हरि जय। जय हर अखिलात्मन् जय जय॥
जय विराट् जय जगत्पते। गौरीपति जय रमापते॥

एकवर्षीय शुल्क ₹ २५०

पंचवर्षीय शुल्क ₹ १२५०

विदेशमें Air Mail शुल्क — वार्षिक US$ 50 (₹ 3,000), पंचवर्षीय US$ 250 (₹ 15,000) — Us Cheque Collection Charges 6$ Extra

संस्थापक—**ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका**

आदिसम्पादक—**नित्यलीलालीन भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार**

सम्पादक—**राधेश्याम खेमका,** सहसम्पादक—**डॉ० प्रेमप्रकाश लक्कड़**

केशोराम अग्रवालद्वारा गोबिन्दभवन-कार्यालय के लिये गीताप्रेस, गोरखपुर से मुद्रित तथा प्रकाशित

website : **gitapress.org** | e-mail : **kalyan@gitapress.org** | ✆ **09235400242 / 244**

सदस्यता-शुल्क—**व्यवस्थापक—'कल्याण-कार्यालय', पो० गीताप्रेस—२७३००५, गोरखपुर को भेजें।**

Online सदस्यता हेतु gitapress.org पर **Kalyan** या **Kalyan Subscription** option पर click करें।

अब 'कल्याण' के मासिक अङ्क gitapress.org अथवा **book.gitapress.org** पर नि:शुल्क पढ़ें।

कल्याण

याद रखो—मनुष्यकी सच्ची प्रतिष्ठा तो उसके जीवनमें सर्वत्र प्रकाशित दैवी गुणोंमें है—दैवी जीवनमें है। धन और पदसे जीवनकी महत्ताका जरा भी सम्बन्ध नहीं है। धन तो अत्याचारी डकैतोंके पास भी हो सकता है। दुष्ट राक्षस भी समस्त दैवी जगत्‌को संत्रस्त करनेवाली अपनी राक्षसी शक्तिके द्वारा कुछ समयके लिये विश्व-सम्राट्‌के पदपर आरूढ़ हो सकते हैं।

याद रखो—जिन्होंने अपने बुरे आचरणों तथा दुष्ट व्यवहारोंसे मानवतापर कलंक लगा दिया है, जो अपने निषिद्ध कर्मोंके द्वारा जगत्‌के सामने नीच तथा पतित आदर्शकी प्रतिष्ठा कर रहे हैं, वे कुछ समयके लिये इन्द्रियोंके गुलाम, चाटुकार, भ्रान्त और भोग-परायण जनसमूहपर धन और अधिकारकी धाक जमाकर उसके द्वारा भले ही मिथ्या अभिनन्दन तथा प्रतिष्ठा प्राप्त कर लें; परंतु उनको अपने दुष्कर्मोंका भीषण परिणाम अवश्य भोगना पड़ेगा।

याद रखो—मनुष्य पतित-समाजमें अपने पतित कर्मोंकी प्रमुखतासे प्रशंसा-प्रतिष्ठा प्राप्त कर सकता है, वैसे ही जैसे चोर-डकैतोंके दलमें सफल चोर-डकैत आदर-सम्मान प्राप्त करता है; परंतु इस आदर-सम्मान और प्रशंसा-प्रतिष्ठासे उसका और भी पतन होता है और कर्मफलनियन्ता सर्वशक्तिमान् परमात्माकी दृष्टि, न्याय और दण्डसे वह कभी नहीं बच सकता।

याद रखो—मनुष्य ऊपरसे भला बनकर, भले-मानुषका वेश धारणकर भोली जनताको ठगनेके लिये दम्भ कर सकता है और उसमें सफल भी हो सकता है; परंतु सर्वान्तर्यामी परमात्माके सामने उसका दम्भ नहीं चल सकता—उसकी पोल खुल जाती है और उसे अपने कर्मका भयानक फल भोगना ही पड़ता है।

याद रखो—दम्भी पुरुष चाहे यह मान ले कि मैं बड़ा चतुर हूँ, लोगोंको बड़ी आसानीसे ठग सकता हूँ, पर वस्तुतः वह स्वयं ठगाता है—अपनी सच्ची सम्पत्ति—दैवी सम्पत्तिको खोकर वह अपना बहुत बड़ा नुकसान करता है।

याद रखो—दैवी सम्पत्तिके लक्षण या दैवी गुण प्रधानतया ये छब्बीस हैं—निर्भयता, अन्तःकरणकी पवित्रता, ज्ञानयोगमें स्थिति, दान, इन्द्रियदमन, यज्ञ, स्वाध्याय, तप, सरलता, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, निन्दा-चुगली न करना, प्राणियोंपर दया, लालचका अभाव, मृदुता, बुरे कर्मोंमें लज्जा, चपलताका अभाव, तेज, क्षमा, धैर्य, बाहर-भीतरकी शुद्धि, अद्रोह और मानका अभाव।

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

याद रखो—जिनमें ये दैवी गुण हैं, वे संसारके बन्धनसे मुक्त होकर भगवान्‌को प्राप्त हो जायँगे, उनका मनुष्य-जन्म सफल हो जायगा। इसके विपरीत, जिनमें उपर्युक्त आसुरी और राक्षसी भाव होंगे, उनका यहाँ तो पतन होगा ही, वे कर्मबन्धनमें और भी जकड़े जायँगे।

याद रखो—मनुष्यका मनुष्यत्व इसीमें है कि वह स्वयं भगवान्‌को भजे और दूसरोंको भजनमें लगाये। जो इससे विपरीत केवल विषय-भोगमें लगा है, वह पशु है और जो विषय-भोगोंकी प्राप्तिके लिये हिंसा, असत्य, अन्याय, दम्भ और निषिद्ध कर्मोंका आश्रय लेता है, वह तो पिशाच या राक्षस है। **'शिव'**

आवरणचित्र-परिचय—

भगवान् श्रीरामकी बालछवि

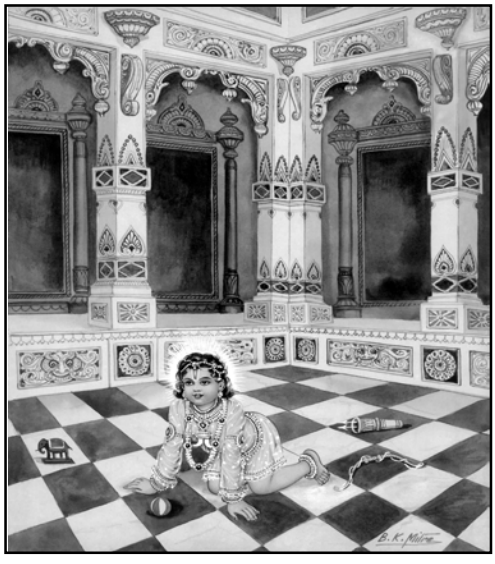

श्रुतियाँ 'नेति-नेति' कहकर जिस परमात्माका वर्णन करती हैं, जो मन तथा वाणीसे परे है, सम्पूर्ण विश्वका जो मूल कारण है, जो सर्वेश्वर और सर्वाधार है, जिसके विषयमें वेदवाणी कहती है—'**न तस्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः।**'

अर्थात् 'उसे कोई उत्पन्न करनेवाला नहीं और उसका कोई स्वामी भी नहीं।'

वही निर्गुण, निराकार, अनादि, अनन्त, अव्यक्त, सर्वशक्तिमान् परम ब्रह्म प्रेमके वशमें होकर नन्हा-सा बालक बन जाता है। अपनेको समर्पित कर देता है वह निखिलब्रह्माण्डनायक।

महाराज दशरथने पुत्रेष्टि यज्ञ किया और अग्निदेवने उन्हें प्रकट होकर चरु (पायस) दिया, यह सब तो एक निमित्त है। यह भी लीलामयकी वैसी ही लीला है, जैसे दूसरे नर-नाट्य उन्होंने किये। महाराज दशरथ तो साकेतके नित्य पिता हैं और माता कौसल्या नित्य माता हैं। परात्पर परमब्रह्म साकेत-विहारी श्रीराम सदा-सर्वदा श्रीदशरथनन्दन एवं कौसल्या-नन्दवर्धन ही हैं। अतः पृथ्वीपर उनके प्रकट होनेके जितने कारण कहे जाते हैं—सब लीलामात्र हैं। यहाँ उनकी बालक्रीड़ाकी एक मनोरम झाँकी प्रस्तुत की जा रही है—

श्रीराम कुछ बड़े हो गये हैं। अब वे महाराजके मणिमय आँगनमें घुटनोंके बल सरक लेते हैं। उनके कर-चरणोंमें मणिमय आभूषण आ गये हैं। '***बालक रूप राम कर ध्याना।***' श्रीकाकभुशुण्डिजीके आराध्यदेव शंकर-मानस-मराल, इनकी शोभा अवर्णनीय है। ध्यान करनेयोग्य है यह बालछवि—

काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती॥
रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गभीर जान जेहिं देखा॥
भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हियँ हरि नख अति सोभा रूरी॥
उर मनिहार पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा॥
कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई॥
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे॥
सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥
पीत झगुलिआ तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई॥

और सच्ची बात तो यह है कि—

रूप सकहिं नहिं कहि श्रुति सेषा। सो जानइ सपनेहुँ जेहि देखा॥

एक बार इन नेत्रोंसे न सही, स्वप्नमें भी जिन्होंने उस अपरूप रूपको देखा है, धन्य है उनका जीवन। उन्होंने ही संसारमें जन्म लेनेका फल पाया है। कवितावलीमें गोस्वामी तुलसीदासजी कहते हैं—

पग नूपुर औ पहुँची करकंजनि मंजु बनी मनिमाल हिएँ।
नवनील कलेवर पीत झँगा झलकै पुलकैं नृपु गोद लिएँ॥
अरबिंदु सो आनन रूप मरंदु अनंदित लोचन भृंग पिएँ।
मनमो न बस्यो अस बालकु जौं तुलसी जगमें फल कौन जिएँ॥

इन शोभासिन्धुके बोलनेकी, हठ करनेकी, खीझनेकी एक शोभा है—अपूर्व शोभा। अरुण अधरोंसे निकली तोतली वाणी—

बर दंतकी पंगति कुंदकली अधराधर-पल्लव खोलनकी।
चपला चमकैं घन बीच जगैं छबि मोतिन माल अमोलनकी॥
घुँघरारि लटैं लटकैं मुख ऊपर कुंडल लोल कपोलनकी।
नेवछावरि प्रान करै तुलसी बलि जाउँ लला इन बोलनकी॥

भगवान्‌की प्राप्ति करानेवाले उत्तम गुण और आचरण

(ब्रह्मलीन परम श्रद्धेय श्रीजयदयालजी गोयन्दका)

उत्तम गुण और उत्तम आचरण शीघ्र परमात्माकी प्राप्ति करानेवाले हैं। उत्तम गुणोंसे अभिप्राय है—हृदयके उत्तम भाव और उत्तम आचरणोंसे अभिप्राय है—मन, वाणी और शरीरकी उत्तम क्रिया। इनमें उत्तम क्रियाओंसे उत्तम भावोंका संगठन होता है और उत्तम भाव होनेसे उत्तम क्रियाएँ स्वाभाविक ही होती हैं। ये परस्पर एक-दूसरेके सहायक हैं। फिर भी क्रियाकी अपेक्षा भाव प्रधान है। जैसे कोई मनुष्य दूसरोंके अनिष्टके लिये यज्ञ, दान, तप आदि करता है, तो उसकी वह क्रिया तामसी है और वही क्रिया यदि पुत्र, स्त्री, धन और स्वर्ग आदिके लिये की जाती है, तो राजसी है तथा निष्कामभावसे संसारके हितके लिये भगवत्प्रीत्यर्थ करनेपर वही क्रिया सात्त्विकी हो जाती है। क्रिया एक होते हुए भी भाव उत्तम होनेसे वह उत्तम फलदायक बन जाती है। इसलिये क्रियाकी अपेक्षा भाव ही प्रधान है।

जो दुराचार, दुर्व्यसन और व्यर्थकी क्रियाएँ हैं, वे सब तो नरकमें ले जानेवाली हैं, उनकी तो यहाँ कोई चर्चा ही नहीं है। वे तो सर्वथा त्याज्य हैं। जो कल्याणकारक आचरण हैं, जो भगवत्प्राप्तिमें सहायक हैं, उन्हींकी यहाँ चर्चा की जाती है। वे सब आचरण भी निष्कामभावसे किये जानेपर ही कल्याण करनेवाले होते हैं। इसलिये शास्त्रोक्त उत्तम क्रियाओंका आचरण निष्कामभावसे ही करना चाहिये। उत्तम क्रियाएँ कौन-कौन-सी हैं, उनका कुछ दिग्दर्शन नीचे कराया जाता है—

सबके साथ सरलता, विनय, प्रेम और आदरपूर्वक नि:स्वार्थभावसे व्यवहार करना।

शरीरको जल और मृत्तिकासे शुद्ध और स्वच्छ रखना तथा घर और वस्त्रोंको भी शुद्ध और स्वच्छ रखना।

ब्रह्मचर्यका पालन करना। किसी भी सुन्दरी युवती स्त्रीका अथवा पुरुष या बालकका अश्लीलभावसे दर्शन, भाषण, स्पर्श, चिन्तन, एकान्तवास आदि कभी न करना।

मन, वाणी, शरीरसे किसी क्षुद्र-से-क्षुद्र भी प्राणीको किसी भी निमित्तसे किंचिन्मात्र भी कभी दु:ख न पहुँचाना, बल्कि अभिमानका त्याग करके नि:स्वार्थभावसे सबका सब प्रकारसे परम हित ही करते रहना। कोई अपना अनिष्ट भी करे तो भी उसका हित ही करना।

वाणीके द्वारा भगवान्‌के नामका प्रेम और आदरपूर्वक निरन्तर जप करना तथा सत्-शास्त्रोंका स्वाध्याय करना एवं जो सत्य और प्रिय हो तथा जिसमें सबका हित हो, ऐसा कपटरहित सरल वचन बोलना।

सदा शास्त्रकी मर्यादाका पालन करना। भारी-से-भारी कष्ट पड़नेपर भी लज्जा, भय, लोभ, काम अथवा किसी भी कारणसे मर्यादाका त्याग नहीं करना।

महापुरुषोंका संग, सेवा-सत्कार, नमस्कार और उनकी आज्ञाका पालन करना इत्यादि।

इस प्रकारके उत्तम आचरणोंको नि:स्वार्थभावसे करनेपर अन्त:करणकी शुद्धि होकर भगवान्‌की प्राप्ति हो जाती है।

इसके सिवा, जिनके कान भगवान्‌के नाम, रूप, गुण, प्रभाव, लीला, तत्त्व, रहस्यकी बातोंको सुनते-सुनते अघाते नहीं, जिनके नेत्र केवल भगवान्‌के दर्शनोंके लिये ही चातक और चकोरकी भाँति लालायित रहते हैं, जिनकी वाणी प्रेमपूर्वक भगवान्‌के गुणोंका ही गान करती रहती है, जिनकी नासिका भगवान्‌के स्वरूप तथा भगवान्‌को अर्पण किये हुए पुष्प, चन्दन, माला, तुलसी नैवेद्य आदिकी गन्धको लेकर मग्न होती रहती है, जिनकी जिह्वा भगवान्‌के अर्पण किये हुए प्रसादका ही आस्वादन करती है तथा जो नर-नारी भगवान्‌को अर्पण करके ही और भगवान्‌की प्रसन्नताके लिये ही भगवान्‌का प्रसाद समझकर वस्त्र और आभूषण धारण करते हैं, जो मनुष्य अपने शरीरसे ईश्वर, देवता और ब्राह्मणोंका तथा वर्ण, आश्रम, गुण, पद, और अवस्थामें जो अपनेसे बड़े हों, उनका प्रेम और विनयपूर्वक आदर-सत्कार, सेवा,

आज्ञापालन और नमस्कार करते हैं, जो एकमात्र भगवान्‌पर ही निर्भर रहकर हाथोंके द्वारा भगवान्‌की सेवा, पूजा श्रद्धा-प्रेमपूर्वक निष्कामभावसे करके मुग्ध होते हैं, जो भगवान्‌के लीलाविग्रहों और उनके भक्तोंके दर्शनार्थ ही चरणोंसे तीर्थोंमें जाते और श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनमें स्नान करते हैं, जो भगवान्‌के मन्त्रका श्रद्धा-भक्तिपूर्वक जप करते हैं, जो शास्त्र-विधिके अनुसार नित्य दान, श्राद्ध, तर्पण, होम, ब्राह्मण-भोजन श्रद्धा-प्रेमपूर्वक करते हैं,जो माता, पिता, स्वामी, आचार्य आदि गुरुजनोंको भगवान्‌से भी बढ़कर समझते तथा उनकी सब प्रकारसे श्रद्धा, भक्ति और आदरपूर्वक सेवा, सत्कार और पूजा करते हैं—इस प्रकार जो केवल भगवान्‌में प्रेम होनेके लिये ही श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भक्तिसंयुक्त उपर्युक्त आचरण करते हैं, उनके हृदयमें भगवान् विशेषरूपसे निवास करते हैं।

जिनके हृदयमें सम्पूर्ण दुर्गुणोंका अभाव होकर सद्‌गुण प्रतिष्ठित हो जाते हैं, उनके हृदयमें भगवान् विशेषरूपसे निवास करते हैं और वे शीघ्र ही परमात्माके निकट पहुँच जाते हैं।

जिनमें काम-क्रोध, लोभ-मोह, अहंकार-अभिमान, मद-मत्सर, दम्भ-दर्प, राग-द्वेष, छल-कपट, अशान्ति-क्षोभ, आलस्य-प्रमाद, भोगवासना और विक्षेप आदिका अत्यन्त अभाव हो गया है, जो सबके हेतुरहित प्रेमी, सबके हितमें रत, सुख-दुःख, निन्दा-स्तुति, मान-अपमान, जय-पराजय, लाभ-अलाभमें सम हैं, जिनके मनमें भगवान्‌के सिवा अन्य कोई आश्रय नहीं है, जो निरन्तर भगवान्‌के ही शरण हैं, जिन्हें भगवान् प्राणोंसे भी बढ़कर प्यारे हैं, जिनका भगवान्‌में ही अनन्य विशुद्ध प्रेम है, जो माता-पिता, भाई-बन्धु, मित्र, स्वामी, गुरु, धन, विद्या, प्राण—सर्वस्व एक भगवान्‌को ही मानते हैं, जो परनारीको माताके समान और पराये धनको विषके समान समझते हैं, जो दूसरोंके दुःखसे दुखी और दूसरोंके सुखसे ही सुखी रहते हैं, जो दूसरोंके अवगुणोंको नहीं देखते, उनके गुणोंको ही ग्रहण करते हैं, जो गौ, ब्राह्मण और समस्त प्राणियोंके हितमें रत हैं, जो नीतिमें निपुण हैं, जो अपनेमें जो कुछ अच्छाई, है, उसे भगवान्‌की कृपा समझते हैं और अपनेमें जो बुराई है, उसे अपने स्वभावका दोष मानते हैं, भगवान्‌के भक्तोंमें जिनका प्रेम है, जो जाति, पाँति, धन, घर, परिवार, धर्म, बड़ाई आदि सबमें आसक्तिका त्यागकर भगवान्‌को ही हृदयमें धारण किये रहते हैं, जिनकी दृष्टिमें स्वर्ग, नरक और मोक्ष समान हैं, जो सर्वत्र भगवान्‌को ही देखते रहते हैं, जो मन, वाणी और शरीरसे भगवान्‌के ही सच्चे सेवक हैं और जो कभी कुछ भी नहीं चाहते, प्रत्युत जिनका एकमात्र भगवान्‌में ही स्वाभाविक निष्काम प्रेम है, ऐसे मनुष्योंके हृदयमें भगवान् विशेषरूपसे निवास करते हैं।

यों तो भगवान् सब जगह समान-भावसे व्यापक हैं ही, किंतु जिनके हृदयका भाव उपर्युक्त प्रकारसे उत्तमोत्तम सद्‌गुण और भगवत्प्रेमसे युक्त है, उनके हृदयमें भगवान् विशेषरूपसे विराजमान हैं। गीता (९।२९)-में भगवान् कहते हैं—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

'मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न कोई प्रिय है; परंतु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।'

यद्यपि ब्रह्मासे लेकर स्तम्बपर्यन्त समस्त प्राणियोंमें भगवान् अन्तर्यामीरूपसे समभावसे व्याप्त हैं, इसलिये उनका सबमें समभाव है और समस्त चराचर प्राणी उनमें सदा स्थित हैं, तथापि भगवान्‌का अपने भक्तोंको अपने हृदयमें विशेषरूपसे धारण करना और उनके हृदयमें स्वयं प्रत्यक्षरूपसे निवास करना भक्तोंकी अनन्य भक्तिके कारण ही होता है।

जैसे समभावसे सब जगह प्रकाश देनेवाला सूर्य दर्पण आदि—स्वच्छ पदार्थोंमें प्रतिबिम्बित होता है, काष्ठादिमें नहीं होता, तथापि उसमें विषमता नहीं है; वैसे ही भक्तोंके हृदयमें विशेषरूपसे विराजमान होनेपर भी भगवान्‌में विषमता नहीं है।

जिनका किसीसे भी द्वेष नहीं, सबपर हेतुरहित दया और प्रेम है, जो क्षमाशील हैं, अहंकार और ममताका जिनमें अत्यन्त अभाव है, जिन्होंने अपने मन, बुद्धि और

इन्द्रियाँ वशमें करके भगवान्‌में ही लगा दिये हैं, जिनसे किसीको भी उद्वेग नहीं होता, जिनका हृदय इच्छा, भय, उद्वेग और आसक्तिका अत्यन्त अभाव होकर परम शुद्ध हो गया है, जो पक्षपातरहित और दक्ष हैं, जो संसारसे उदासीन और विरक्त हैं, जिनमें कर्मोंके कर्तापन और फलेच्छाका अत्यन्त अभाव है, हर्ष-शोकका भी जिनमें अत्यन्त अभाव है, जिनका वैरी-मित्रमें, शीत-उष्णमें, अनुकूलता-प्रतिकूलतामें और मिट्टी-स्वर्णमें समान भाव है, इसी प्रकार सम्पूर्ण प्राणी, पदार्थ, भाव, क्रिया और परिस्थितिमें जिनका समान भाव रहता है, जो भगवान्‌के विधानमें हर समय सन्तुष्ट है, घर और देहमें अभिमानसे रहित हैं, जिनकी बुद्धि स्थिर है और जो परमात्माके ज्ञानमें ही नित्य स्थित हैं—ऐसे भक्तिसंयुक्त सद्‌गुणोंसे सम्पन्न भगवान्‌के भक्त भगवान्‌को अत्यन्त प्रिय हैं।

इसलिये हमें चाहिये कि अपने भाव और क्रियाओंको उत्तम-से-उत्तम बनायें। वास्तवमें भाव उत्तम होनेसे क्रिया अपने-आप स्वाभाविक ही उत्तम होने लगती है, उसमें कुछ भी परिश्रम नहीं करना पड़ता और जो सर्वथा ईश्वरके ही शरण हो जाता है, अपने-आपको ईश्वरके समर्पण कर देता है, उसमें ईश्वरकी भक्तिके प्रभावसे उत्तम गुण स्वतः ही आ जाते हैं। अतः हम लोगोंको उत्तम गुण और उत्तम भावकी प्राप्तिके लिये सब प्रकारसे ईश्वरकी शरण होकर निष्काम प्रेम-भावसे ईश्वरकी अनन्य भक्ति करनी चाहिये। इस प्रकार करनेपर ईश्वरकी कृपासे प्रमाद, आलस्य, भोगवासना, दुर्गुण, दुराचार, दुर्व्यसन और व्यर्थ संकल्पोंका अत्यन्त अभाव होकर परम कल्याणकारक विवेक और वैराग्ययुक्त सद्‌गुण-सदाचार स्वतः ही आ जाते हैं।

धन और सुख

(प्रो० श्रीरामचरण महेन्द्रजी, एम०ए०)

'धन और सुख—क्या इन दोनोंमें कोई अन्योन्याश्रित निकट सम्बन्ध है? जो व्यक्ति हमारे समाजमें अतुल धनके स्वामी हैं, जिनके पास लक्ष्मीका अनन्त वैभव है, जिनके इंगितपर सैकड़ों नौकर भाग उठते हैं, क्या वे आन्तरिक रूपमें सुखी, तृप्त और सन्तुष्ट भी हैं? जिन लक्ष्मीपुत्रोंके पास बृहत् पूँजी है; जमीन-जायदाद, धन-मकान इत्यादि हैं, क्या उन्हें पूर्ण आनन्द, सन्तोष और शान्ति-जैसे दैवी गुण भी उपलब्ध हैं? सुसज्जित मकान, सुन्दर वस्त्र, आभूषण, मोटर, सुस्वादु भोजन एवं धन-सम्पदाके भण्डारोंके स्वामी क्या इस संसारका सुख लूटते हैं?'—ये ऐसे प्रश्न हैं, जो भौतिक सुखके पीछे उन्मत्त जनमानसको आज उद्वेलित कर रहे हैं। समग्र सभ्य संसार धन-लिप्सापर प्राण दे रहा है।

क्या वास्तवमें धनमें सुख है? इस महत्त्वपूर्ण प्रश्नपर विचार करनेसे पूर्व यह जान लेना चाहिये कि धन वस्तुतः क्या है?

धन एक ऐसा भौतिक साधन है, जिसके माध्यमसे हम समाजमें भिन्न-भिन्न आवश्यक वस्तुएँ उपलब्ध कर सकते हैं और अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति कर सकते हैं। धनके माध्यमसे हमें नित्य-प्रतिके दैनिक जीवन और समाजसे सम्बन्धित चीजें प्राप्त हो सकती हैं। इनके द्वारा हम अपने तथा अपने परिवारके भोजन, वस्त्र, निवास, मनोरंजन आदिके भौतिक सुख प्राप्त कर सकते हैं।

दूसरे शब्दोंमें यों कहें कि धन एक भौतिक साधन या माध्यम है, जिसके द्वारा हम अपनी भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करते हैं और अपने शरीरको सन्तुष्ट करते हैं। प्रत्येक पैसेमें अनेक छोटी-छोटी वस्तुएँ सिमिटकर आ बसी हैं।

परंतु जब धन ही मनुष्यका साध्य बन जाता है और हम धन-संग्रहको ही जीवनका प्रधान लक्ष्य बना लेते हैं, तब हम एक ऐसी दुष्प्रवृत्तिमें फँस जाते हैं, जिससे हमें लाभ और शान्तिके स्थानपर मोह, तृष्णा, अतृप्ति, लालच और मानसिक अशान्ति मिलने लगती है। हम धनको बढ़ाने, दूसरोंपर दमनचक्र चलाने, झूठी शान स्थिर रखने, संचित पूँजीको सहेजनेके मायाजालमें लग जाते हैं। मनकी शान्ति भंग हो जाती है और अतृप्ति

मनके सन्तुलनको नष्ट कर देती है। हमारे आन्तरिक एवं आध्यात्मिक विकासकी इतिश्री हो जाती है।

अधिक धन-संग्रहसे लालच, मिथ्या अभिमान, अपहरणकी चिन्ता, दूसरोंसे प्रतियोगिता तथा धन हाथसे निकल जानेपर अकाल मृत्युतक होती देखी गयी है। कारण, धन और चिन्ताका अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। प्रथम तो धन अर्जित करनेकी चिन्ता, फिर उसे बढ़ानेकी फिक्र, चोरीसे बचानेकी तरकीबें, आनेवाले खतरोंसे बचनेके प्रयत्न, मृत्युकालमें प्राण निकलनेमें भयंकर कष्ट, उत्तराधिकारीके सुपात्र अथवा कुपात्र निकलनेकी दुविधा—प्रारम्भसे अन्ततक धनमें चिन्ता और कष्टका ही निवास है। जैसे-जैसे धन एकत्रित होना आरम्भ होता है, वैसे-वैसे ही अनेक प्रकारकी कुत्सित चिन्ताएँ, मानसिक भार, अतृप्ति, लालसा, प्रमाद, दूसरोंका शोषण करनेकी राक्षसी वृत्तियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

(१)

एक वैभवशाली सेठ, जिनकी पिछले दिनों हृदयकी गतिके रुकनेसे आकस्मिक मृत्यु हुई है, नगरभरमें अपने धन और ऐश्वर्यके लिये प्रसिद्ध रहे, आज भी लोग उनका नाम स्मरण कर लेते हैं। धनके साथ उनमें विलासिताने पदार्पण किया; वासनाएँ उद्दीप्त हो उठीं, कामभावनाने बेचैन किया, तो संयमके स्थानपर वृद्धावस्थामें पुनः विवाह कर लिया। धनका लालच पाकर एक व्यक्तिने अपनी कन्याका सम्बन्ध कर दिया। वासना तो प्रत्यक्ष अग्नि है। भड़कानेसे और भड़कती है। तनिकसे प्रोत्साहनसे विषैला रूप धारण कर लेती है। सेठजी विलासितामें डूबे; उनके परिवारमें पुनः वृद्धि होनी शुरू हुई। दो पुत्र और हो गये। नयी चिन्ताका जन्म हुआ। उनके पोषण-शिक्षणके अतिरिक्त नवयौवना पत्नीके विलासी जीवनको तृप्त न कर सकनेसे वे स्वयं मन-ही-मन एक गुप्त वेदनाका अनुभव करते रहते थे। भय था कि पत्नी पथभ्रष्टा न हो जाय। इधर व्यापारमें मन्दी आयी। काम ठप्प हो गया; हानि काफी हुई। आर्थिक आघात न सम्हाल सके। जायदादके बिकनेतककी नौबत आ गयी। जिस दिन उन्हें ज्ञात हुआ कि उनके दिवालेकी अफवाह बाजारमें है। उसी दिनसे उनके मनमें भयंकर हृत्पीड़ा होने लगी। मानसिक चिन्ताने भयंकर रूप धारण किया। एक रात एकाएक हृदयकी गति रुकनेसे उनकी मृत्यु हो गयी!

समाचार-पत्रमें लिखा गया था कि ५७ वर्षकी वृद्धावस्थाके कारण सेठजीकी मृत्यु हो गयी थी, पर ५७ वर्षकी आयु क्या, आज भी फक्कड़ मस्त फ़कीर गरीब ९०-९५ तक स्वस्थ जीवित रहते हुए मिलते हैं। किसे ज्ञात था कि सेठजीकी मृत्युका कारण वृद्धावस्था नहीं, धनके जानेका दुःख, पुनः वही प्रतिष्ठित पद प्राप्त करनेकी चिन्ता, जनतामें फैलनेवाली अपकीर्ति और पत्नीकी अतृप्ति, सन्तानका बोझ आदि थे। धन अपने साथ जो जिम्मेदारी और असंख्य चिन्ताओंका भार लाता है, उस दुष्टने उन्हें धराशायी कर दिया। यदि धनमें शान्ति होती, तो क्यों सेठजी अशान्त रहते?

(२)

पंजाबके एक अन्य पूँजीपतिका वृत्तान्त मेरे मानसमें उदित हो आया है। ये महानुभाव गल्लेके बड़े व्यापारी हैं। लक्ष्मीकी कृपा हुई तो एक सामान्य स्थितिसे निरन्तर उन्नत होते गये। स्वयं अध्यवसाय और परिश्रमसे कार्य किया तथा शहरके एक प्रतिष्ठित धन-सम्पन्न व्यक्ति गिने जाने लगे। ढलती अवस्थामें कारोबार उनके पुत्रोंके हाथमें आया, तो विलास, शैथिल्य और मुफ्तमें माल कमानेके धन्धे सोचे जाने लगे। लड़के सट्टेमें पड़ गये। एक-दो बार भाग्यने साथ भी दिया, पर एक उदास सुबह उन्होंने सुना कि सट्टेका दाँव उनके विपरीत रहा है और वे सब कुछ हार गये हैं।

'मेरा सब कुछ चला गया। अब क्या करें? लोग क्या कहेंगे? घरका मकान और दूकानें बेची जायँ, तभी मान-प्रतिष्ठा बच सकती है। वृद्धावस्थामें यह दुर्दिन भी देखना बदा था! क्या करूँ? आत्महत्या कर लूँ? या कहीं भाग जाऊँ? लेकिन कर्जेवाले मुझे कब छोड़ेंगे।' अनेक समस्याएँ मनमें लिये वे मुझसे मिले, सलाह पूछी।

मैं बोला, 'धन घीमें पड़नेवाली अग्नि है। यह ऐसा आधार है, जो क्षणभरमें हट सकता है। इसका विश्वास कभी न कीजिये। कुछ अनावश्यक मकान या जायदाद बेचकर बेहद जरूरतमन्द कर्जदारोंका ऋण चुका दीजिये। आपके तीन पुत्र हैं, वर्षोंके अनुभवका संचित कोष आपके

पास है। नये जोश, ईमानदारी, संयम और मितव्ययतासे व्यापार करेंगे, तो पुन: उसी स्थितिमें आ जायँगे।'

वे मेरी सम्मति मान गये। लगभग आधी जायदाद बेच दी गयी। शेषसे पुन: व्यापार किया। आठ वर्षकी निरन्तर साधनाके अनन्तर आज वे पुन: सम्पन्न स्थितिमें आ गये हैं। उन्हें अब भी तृप्ति नहीं। आवश्यकताएँ बढ़ी हुई हैं। स्वास्थ्य चिन्तामें घुलता जा रहा है। कभी-कभी स्वप्नमें अपनी पुरानी दुरवस्थाको देखकर व्यग्र और अशान्त हो उठते हैं। धनको बनाये रखनेकी कृत्रिम चिन्ता उनके मनकी शान्ति और सन्तुलनको ठीक नहीं होने देती। सारे दिन खोये-खोये-से रहते हैं।

धनके संसर्गसे मोह और दर्पके अतिरिक्त मनुष्यमें एक मिथ्या शान आ जाती है। नगण्य-सा होते हुए भी वह स्वयं अपनेको बड़ा महत्त्वपूर्ण समझने लगता है। उसे अपनी बाहरी टीपटाप, मिथ्या प्रदर्शनकी भावनाका बड़ा ध्यान रहता है। यदि कभी संयोगवश धनकी कमी हो जाय, पूँजी अटक जाय, बाजार मन्दा हो जाय, व्यापारमें घाटा आ जाय या चोरी हो जाय तो धनीके तो जैसे प्राण ही निकल जाते हैं। धनके साथ उसे सदा ज्यों-का-त्यों बनाये रखनेकी अतृप्त इच्छा मनमें बनी रहती है। इसीसे धनी व्यथित रहता है। उसका स्वास्थ्य नष्ट हो जाता है। चिन्ताओंके कारण न पूरी निद्रा आती है, न भोजन ही पचता है। फलत: वह अकाल मृत्युको प्राप्त होता है।

धनी प्राय: कृपण होते हैं। लोभसे हमारे मनमें एक संकुचितता प्रविष्ट हो जाती है। यह संकुचितता मनुष्यकी दैवी वृत्तियों (उदारता, प्रेम, दया, प्रसन्नता, सहानुभूति, कोमलता, समवेदना)-का नाश कर देती है। धनी चाहे बाहरसे मुसकराता दिखायी दे, अन्दरसे उदास, चिन्तित, दुखी, अतृप्त बना रहता है। वह जनसाधारणमें न हँसकर बैठ सकता है, न पूरी आजादीका उपभोग कर सकता है। पूँजीपतियोंके व्यक्तिगत जीवन चिन्ता, कुढ़न और अतृप्तिका भण्डार होते हैं। धनका जितना आधिक्य होता है, उसी अनुपातमें मिथ्या गर्व और चिन्ता बढ़ती रहती है। धन जितना अधिक संग्रह किया जाता है, वह उतना ही गुप्त मानसिक उत्तरदायित्वजनित भारकी सृष्टि करता है।

यदि धनी चतुर हुआ, तो वह धनका सदुपयोगकर ऊपर लिखे कष्टोंसे मुक्ति पा सकता है। मनुष्यको धन कितना चाहिये? उत्तर सुन लीजिये—

साँई इतना दीजिये जामें कुटुम समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय॥

यही मर्यादा श्रेष्ठ है। अपनी आवश्यकताओंकी पूर्ति हो जाय तथा घरमें पधारनेवाले अतिथिका सत्कार हो सके। यदि धनी दान, परोपकार, समाजसेवा, शिक्षा, धर्मशाला-निर्माण आदिमें व्ययकर धनका सदुपयोग करता चले, तो उसका गुप्त चिन्ता-भार हलका हो जाता है तथा उदारता आती है। आत्मभाव उत्पन्न होनेसे उसका कल्याण हो जाता है।

रुपया जहाँ दूसरोंकी सेवा करने, गिरे हुओंको उठाने, चलते हुओंको प्रोत्साहन देने, धर्म-कर्म करनेका अच्छा साधन है, वहाँ दुरुपयोगद्वारा भयंकर कुकृत्यों, व्यसनों, व्यभिचार, अनीति, अन्याय करनेका भी साधन है। श्रेष्ठ मनुष्य धनकी शक्तिका सदुपयोग कल्याणकर रूपोंमें ही करता है। उसका अपने ऊपर प्रभुत्व नहीं छाने देता। रुपयेको एक साधनमात्र समझकर ग्रहण करता है, उसीको साध्य माननेकी गलती नहीं करता।

सच्चा सुख, शान्ति, आनन्द मनुष्यके मनमें रहनेवाले दिव्य आन्तरिक भाव हैं। सुख स्वास्थ्य और शक्तिके सदुपयोगमें है। सुख हमारे मनकी सन्तोषपूर्ण मन:स्थिति है। इसका सम्बन्ध ईमानदारी, अन्तरात्माकी सन्तुष्ट स्थिति, विवेकशीलता और नि:स्पृहतासे है। जो व्यक्ति कम पैसेवाले अथवा मजदूर होते हैं, वे धनके अनुचित मोह, लालच या चिन्तामें कभी नहीं फँसते; सूखी रोटी खाकर भी तृप्त, दीर्घायु और चिन्तासे मुक्त रहते हैं, सड़कोंके किनारे पड़े हुए फकीर, खेतोंमें सतत परिश्रम करनेवाले कृषक, फैक्टरीके मजदूर आदि धनियोंकी अपेक्षा कहीं अधिक और विलक्षण तृप्त जीवनका सन्तोषामृत पान करते हैं।

सुख, स्वास्थ्य और धन

अनेक व्यक्तियोंको यह भ्रम है कि मानव-शरीरके स्वास्थ्य, शक्ति, सुख एवं आनन्दके लिये हमें बहुत-सा धन चाहिये। जबतक हमारे पास ताकतकी दवाइयों, तर

माल, घी, दूध, पौष्टिक भोजनके लिये पर्याप्त धन नहीं है, हम तीन-चार बार मक्खन, दूध, बिस्कुट, बाजारकी अनेक वस्तुएँ मोल नहीं ले सकते, तबतक किस प्रकार स्वस्थ और सुखी रह सकते हैं?

यह धारणा नितान्त भ्रान्तिमूलक है। निश्चय जानिये, उत्तम स्वास्थ्य, दीर्घायु एवं सुखके लिये धन अनिवार्य नहीं है। कम-से-कम आयवाले व्यक्ति अपने मनकी सही स्थिति एवं शारीरिक, मानसिक परिश्रमद्वारा स्वस्थ और दीर्घायु रहे हैं, और रह सकते हैं।

यदि हमारे मनमें स्वस्थ रहने, शरीरको मजबूत बनाने, कुत्सित वृत्तियोंसे बचकर चलने तथा दीर्घकालतक जीवित रहनेकी उत्कट इच्छा है, तो स्वास्थ्यके साधारण नियमोंके पालन, रूखा-सूखा खाकर और साधारण शारीरिक एवं मानसिक श्रम करके भी हम दीर्घजीवी रह सकते हैं। स्वस्थ रहनेमें धनकी कमी बाधक नहीं है।

जो गरीब हैं, पर स्वास्थ्य-सुख एवं दीर्घजीवनके इच्छुक हैं, उन्हें किसी अवस्थामें हतोत्साहित नहीं होना चाहिये। सुख तो मजबूत, सादे, उच्च विचारवाले जीवनमें निवास करता है। भरपेट सूखी रोटी खाइये और जी-तोड़ परिश्रम कीजिये, सन्तोषामृत पीजिये तथा गन्दे व्यसनोंसे बचे रहिये। परमेश्वरकी इस सृष्टिमें आप रुपयेके मालिक न सही, स्वास्थ्य एवं शक्तिके स्वामी अवश्य रहेंगे।

कल्पना कीजिये, यदि रुपयेसे स्वास्थ्य और दीर्घजीवन खरीदा जा सकता, तो क्या बड़े-बड़े पूँजीपति, ऐश्वर्यशाली अधिपति, जागीरदार, बड़े-बड़े अफसर, व्यापारी कभी मरते। वे बाह्य दृष्टिसे भले ही मोटे-तगड़े प्रतीत हों, किंतु अन्दरसे खोखले, जीर्णरोगी, अतृप्त हैं। रुपयेसे वे ऐसी वस्तुएँ खरीद सकते हैं, जिनके उपयोगसे शक्ति प्राप्त हो सकती है, पर शर्त यह है कि वह पच सके। पाचन रुपयेमें नहीं है। भूखमें स्वाद है। शारीरिक शक्तिके लिये आपको परिश्रम, संयम और व्यायामका धन अपेक्षित है। धनसे आप ऐश्वर्यशाली बन सकेंगे, किंतु सच्चा आनन्द और शान्ति आपको कदापि प्राप्त न हो सकेंगे। रुपयेसे चश्मा मिलेगा, पर दृष्टि नहीं; कोमल शय्या मिलेगी, पर गहरी निद्रा नहीं; निस्तब्धता मिलेगी, पर हार्दिक सन्तोष नहीं; अलंकार मिल सकेंगे, पर सौन्दर्य नहीं; विद्या मिल सकेगी, पर विवेक नहीं; नौकर मिल सकेंगे, पर सच्ची सेवा नहीं; संगी-साथी अनेक इकट्ठे हो जायँगे, पर सच्चे मित्र और हितैषी नहीं; ठकुर-सुहाती बातें खूब मिलेंगी, पर प्रेम नहीं। स्मरण रखिये, संसारकी उत्तम वस्तुएँ, स्वास्थ्य-सुख, यौवन और दीर्घजीवन प्रायः रुपये-पैसे बिना ही प्राप्त हुआ करते हैं। दुनियामें ऐसा कोई माप नहीं कि जिससे आनन्द, स्वास्थ्य, विवेक, प्रेम, निद्रा, शान्ति और शक्ति आदि दैवी तत्त्वोंका मूल्य आँका जा सके।

धनकी यह अतृप्त तृष्णा

धन एक ऐसा पदार्थ है, जिसे प्राप्त करनेपर उसको अधिकाधिक प्राप्त करनेकी कामना उत्तरोत्तर बढ़ती है। धनकी तृष्णा फूँसमें लगी हुई अग्निके समान निरन्तर फैलती ही जाती है। हम यह समझें कि इतना कमानेके पश्चात् और आवश्यकता न होगी, तो ऐसी बात नहीं। यह तो वृद्धावस्थातक चलती ही रहती है। महर्षि भरद्वाजने सत्य ही कहा है—

जीर्यन्ति जीर्यतः केशा दन्ता जीर्यन्ति जीर्यतः।
जीविताशा धनाशा च जीर्यतोऽपि न जीर्यति॥

जब मनुष्यका शरीर जीर्ण होता है, तब उसके बाल पक जाते हैं और दाँत भी टूट जाते हैं, किंतु धन और जीवनकी तृष्णा बूढ़े होनेपर भी जीर्ण नहीं होती—वह सदा नयी ही बनी रहती है।

अधिक धनके मोहसे बड़े सावधान रहें। महर्षि कश्यपने कहा है, यदि ब्राह्मणके पास धनका अधिक संग्रह हो जाय, तो यह उसके लिये अनर्थका हेतु है; धन-ऐश्वर्यसे मोहित ब्राह्मण कल्याण प्राप्त नहीं करता। धन-सम्पत्ति अनुचित मोहमें डालनेवाली होती है; मोह नरकमें गिराता है, इसलिये कल्याण चाहनेवाले पुरुषको अनर्थके साधनभूत अर्थका दूरसे ही परित्याग कर देना चाहिये। जिसको धर्मके लिये धनकी इच्छा होती है, उसके लिये उस इच्छाका त्याग ही श्रेष्ठ है। धनके द्वारा जिस धर्मका साधन किया जाता है, वह क्षयशील है। दूसरेके लिये जो धनका परित्याग है, वही अक्षय धर्म है, वही मोक्षकी प्राप्ति करानेवाला है।

गोपी-हृदयमें प्रेमसमुद्र

(नित्यलीलालीन श्रद्धेय भाईजी श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार)

'कल्याण'में श्रीगोपांगनाओंके सम्बन्धमें बहुत कुछ लिखा जा चुका है। वास्तवमें ये गोपरमणियाँ प्रेम-जगत्‌की तो परम आदर्श हैं ही, नारी-जगत्‌में भी इनकी कहीं तुलना नहीं है। विश्व तो क्या भगवत्-राज्यमें भी किसी भी नारीके चरित्रमें नारी-जीवनकी महिमामयी सेवाकी ऐसी आदर्श मनोहर सहज मूर्तिका वैसा विकास नहीं हुआ, जैसा कि श्रीगोपांगनाओंमें हुआ है। सावित्री, अरुन्धती, लोपामुद्रा, उमा, रमा—किसीकी उपमा श्रीगोपांगनाओंके साथ नहीं दी जा सकती। आत्मसुख-लालसाकी गन्धसे रहित होकर केवल अपने प्रियतम श्रीकृष्णको सुखी करनेके लिये ही जीवन धारण करना, लोक-परलोक, भोग-मोक्ष सब कुछ भूलकर प्रियतमकी रुचिके अनुसार अपने जीवनकी क्षण-क्षणकी समस्त क्रियाओंका सहज सम्पादन करना ही गोपी-प्रेम है।

श्रीकृष्ण स्वयं भगवान् हैं, उनमें किसी भी वासना-कामनाका अलग अस्तित्व नहीं है, पर वे परम प्रेमास्पद भगवान् श्रीगोपांगनाओंके प्रेम-सुखका आस्वादन करने-करानेके लिये अपने भगवत्स्वरूप मनमें नित्य नयी-नयी विचित्र वासनाओंका उदय करते हैं और भगवान्‌की उन प्रतिक्षण उदय होनेवाली नित्य नवीन वासनाओंके अनुकूल अपनेको निर्माण करके भगवान्‌को सुख पहुँचाना केवल श्रीगोपांगनाओंके ही शक्ति-सामर्थ्यसे सम्भव है, बस, प्रियतमकी रुचिको—चाहको पूर्ण करना ही जिनके जीवनका स्वरूप है, जिनकी प्रत्येक स्फुरणामें, प्रत्येक संकल्पमें, प्रत्येक चेष्टामें, प्रत्येक शब्दमें और प्रत्येक क्रियामें केवल प्रेमास्पद श्रीकृष्णकी दिव्य प्रेमजनित वासनापूर्तिका ही सहज सफल प्रयास है; उन श्रीगोपांगनाओंकी तुलना कहीं, किसीसे भी नहीं हो सकती।

श्रीगोपांगनाओंमें मधुर भावकी पूर्ण अभिव्यक्ति है। इस मधुर भावसे ही मधुर रसका प्राकट्य होता है। एक महात्माने बताया है कि यह मधुर रस तीन प्रकारका होता है। तीनों ही अत्यन्त मूल्यवान् हैं, पर एककी अपेक्षा दूसरा अधिक उत्कृष्ट और मूल्यवान् है। जैसे साधारण मणि, चिन्तामणि और कौस्तुभमणि। साधारण मणिका जैसे साधारण मूल्य होता है, वैसे ही श्रीकृष्णके प्रति कुब्जाकी प्रीतिका मूल्य साधारण है। श्रीकृष्ण-सम्पर्कसे महाभागा होनेपर भी उसमें श्रीकृष्णकी सेवा करके केवल अपने ही सुखका सन्धान था। इसीसे उसे 'दुर्भगा' कहा गया। चिन्तामणि जहाँ-तहाँ सहजमें नहीं मिलती। उसका मूल्य भी बहुत अधिक है। सब लोग उतना मूल्य दे ही नहीं सकते; ऐसे ही श्रीकृष्णकी पटरानियोंकी दिव्य प्रीति है। श्रीकृष्णका भी सुख और अपना भी सुख—उनमें इस प्रकारका उभय सुखी भाव बना रहता है, इसलिये उनकी इस रतिका नाम समंजसा है। श्रीगोपांगनाका प्रेम साक्षात् कौस्तुभमणिके सदृश है। चिन्तामणि तो दस-बीस भी मिल सकती है, पर कौस्तुभमणि तो एक ही है और वह केवल श्रीभगवान्‌के कण्ठकी ही भूषण है, वह दूसरी जगह कहीं भी नहीं मिलती। इसी प्रकार श्रीगोपांगनाकी प्रीति भी श्रीकृष्णकी मधुर लीलास्थली व्रजके सिवा अन्यत्र कहीं नहीं मिलती। ऐसा प्रेम श्रीगोपांगना ही जानती है, कर सकती है। और यह प्रेम, इस प्रेमके एकमात्र पात्र श्रीव्रजेन्द्रनन्दन श्यामसुन्दर मुरलीमनोहर गोपीवल्लभ श्रीकृष्णके प्रति ही हो सकता है। इस दिव्य प्रेम-सुधारसका अनन्त अगाध समुद्र नित्य-नित्य लहराता रहता है—गोपीहृदयमें। इसीसे यह अनुपमेय, अतुलनीय और अप्रमेय है। इसीलिये गोपी-हृदयको प्रेमसमुद्र कहा गया है।

ममता

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीचिदानन्दजी सरस्वती, सिहोरवाले)

श्रीविष्णुपुराणमें एक श्लोक है—

ममेति मूलं दुःखस्य निर्ममेति च निर्वृतिः।
शुकस्य विगमे दुःखं न दुःखं गृहमूषिके॥

भाव यह है कि ममता ही दुःखका मूल है और कहीं ममता न बाँधना ही परम सुख-शान्तिका उपाय है। मनुष्य शुक पालता है। उसको खिलाता-पिलाता है और पुत्रवत् उसमें ममता रखता है। इससे शुकके मरनेपर, मनुष्य शोक करता है। पक्षी तो प्रतिदिन हजारों मरते हैं, शुक भी कितने ही मरते होंगे; परंतु उनके लिये किसीको दुःख नहीं होता, परंतु अपना पाला हुआ शुक जब मर जाता है, तब मनुष्य शोक करता है। चूहे भी घरमें रहते हैं, परंतु उनके मरनेसे कोई शोक नहीं करता; क्योंकि उनमें मनुष्यका ममत्व-सम्बन्ध नहीं बँधा होता। इसलिये ममता ही दुःखका मूल है, यह इस श्लोकका तात्पर्य है।

अब यह देखना है कि ममता क्या वस्तु है और वह कैसे बँधती है? 'मम' यानी मेरा और मेरापनका जो भाव है, वही ममता है। जो 'मेरा' नहीं है, उसमें भी 'मेरा है' यह भाव हो जानेपर उसमें ममता बँध जाती है और ममताके विषयके वियोगसे दुःख हुए बिना नहीं रहता।

ममता कैसे बँधती है—यह समझनेके लिये शास्त्रने जगत्‌को दो भागोंमें बाँट रखा है—

ईक्षणादिप्रवेशान्ता सृष्टिरीशेन निर्मिता।
जाग्रदादिविमोक्षान्तः संसारः जीवकल्पितः॥

परमात्मा योगनिद्रामें सोये थे। जागकर देखा तो कुछ भी दीख न पड़ा, तुरंत ही संकल्पकी स्फूर्ति हुई **'एकोऽहं बहु स्याम'**—मैं अकेला हूँ, अनेक रूप हो जाऊँ—यह संकल्प प्रकृतिके ऊपर प्रतिफलित होते ही उसके गुणोंमें क्षोभ हुआ और उससे विविध प्रकारकी सृष्टि उत्पन्न हुई। सृष्टि उत्पन्न तो हुई, परंतु उसमें कोई क्रिया या गति न दीख पड़ी, इससे जैसे सूर्य अपनी अनन्त किरणोंसे सारे ब्रह्माण्डको प्रकाशित करता है, उसी प्रकार परमात्माने अपने अनन्त अंशोंसे सृष्टिमें प्रवेश किया, ऐसा करनेपर सारी सृष्टि चेतनामय हो गयी और सब अपना-अपना व्यवहार करने लगे।

क्योंकि सृष्टिकी रचना प्रकृतिसे हुई है, इसलिये वह स्वभावसे ही विकारवाली है। इसका अर्थ यह है कि पदार्थोंमें रूपान्तर होता रहता है। एक प्राणी उत्पन्न होता है, कुछ समयतक रहता है और फिर नाशको प्राप्त होकर अपने उपादान कारणमें मिल जाता है। शास्त्रोंने इस विकारकी छः अवस्थाएँ (उत्पन्न होना, जीवित रहना, रूपान्तर होना, बढ़ना, घटना और मर जाना) बतलायी हैं, परंतु यहाँ तीन विकारोंके समझ लेनेपर भी काम चल जायगा, यानी उत्पन्न होना, जीना और मर जाना।

इस ईश्वरनिर्मित यानी ईश्वरके द्वारा रची हुई सृष्टिमें कुछ नया उत्पन्न नहीं होता तथा कुछ नाशको भी प्राप्त नहीं होता, केवल रूपान्तर हुआ करता है। उसको हम उत्पत्ति-विनाश कहते हैं। उदाहरणार्थ—एक गेहूँका दाना जमीनमें बोया गया, वह जमीनमें मिल गया और उससे एक अंकुर निकला, अंकुरके बढ़नेपर उससे अनेकों गेहूँके दाने उत्पन्न हुए। पंचमहाभूतसे उत्पन्न हुआ दाना फिर पंचमहाभूतमें मिल गया और पंचमहाभूतमेंसे अंकुर उत्पन्न हुआ और उसमेंसे फिर गेहूँके दाने उत्पन्न हुए। इसी प्रकार जैसे समुद्रसे तरंगें उत्पन्न होती और विनाशको प्राप्त होती दीख पड़ती हैं, उसी प्रकार पंचमहाभूतोंसे भी तरंगें भी उत्पन्न होती और विनाशको प्राप्त होती दीख पड़ती हैं, परंतु वस्तुतः न तो कुछ उत्पन्न होता है और न विनाशको प्राप्त होता है। यह बात दृष्टान्तसे समझनेपर ठीक समझमें आ जायगी।

एक बकरी है। वह चरती-चरती दूर जंगलमें निकल गयी और एक बाघने उसको मार डाला। बकरीकी मृत्युसे ईश्वरकी सृष्टिमें कुछ भी कमी न हुई। पंचमहाभूतोंसे बकरीका शरीर उत्पन्न हुआ था, वह फिर पंचमहाभूतोंमें मिल गया। बाघका खाया हुआ भाग विष्ठा बनकर पृथ्वीमें मिल जायगा और शेष भाग भी अपने-आप अपने-अपने उपादानमें मिल जायँगे। चेतन सत्ता तो एक, अविनाशी और सर्वव्यापक है। अतएव

उसमें घट-बढ़ सम्भव नहीं, इसीलिये बकरीकी मृत्युसे ईश्वररचित सृष्टिमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। पंचमहाभूतकी एक तरंग बकरीके रूपमें दिखलायी दी थी। वह थोड़ी देर रहकर फिर पंचमहाभूतमें मिल गयी।

अब इस बकरीमें जिस मनुष्यकी ममता है; यानी 'यह बकरी मेरी है'—ऐसा जो मानता है और उसमें सुख पाता है, उस मनुष्यको बकरीके विनाशसे दुःख हुए बिना न रहेगा। इस दुःखके होनेका कारण बकरीकी मृत्यु नहीं, मनुष्यने जो ममताकी छाप अपने अन्तःकरणमें डाल रखी थी, उस छापके नाश होनेपर उसको दुःख होता है और वह छाप जितनी अधिक गहरी होती है, दुःख भी उतना ही अधिक होता है। यह बात शास्त्रमें इस प्रकार समझायी गयी है—

चिन्तां कुर्यान्न रक्षायै विक्रीतस्य यथा पशोः।
तथाऽर्पयन् हरौ देहं विरमेदस्य रक्षणात्॥

जबतक बकरी अपने कब्जेमें है, तबतक उसे खिलाने-पिलाने और दुहनेका तथा रक्षा करनेका भार अपने सिरपर है, परंतु किसी कारणवश उस बकरीको बेच दिया या किसीको दे दिया जाय, तो उस दिनसे उस विषयसे अपनी सारी चिन्ता दूर हो जाती है। बकरीका वियोग तो यहाँ भी हुआ है, परंतु अपनी इच्छासे उसका त्याग करनेके कारण हमने अपने चित्तसे बकरीकी छाप स्वयं मिटा डाली है, इसलिये बकरीका वियोग हमें दुःख नहीं देता। इस प्रकार यदि मनुष्य ज्ञानदृष्टि प्राप्त करके, अपने शरीरके सहित सारे प्राणी-पदार्थ ईश्वरके हैं, अतएव उन्हें ईश्वरको सौंप दे, अन्तःकरणपर ममताकी छाप न पड़ने दे, तो उन-उन प्राणी-पदार्थोंके वियोगसे मनुष्यको दुःख न हो।

'तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।'

—इस श्रुतिका तात्पर्य भी यही है। एक ही ईश्वर जब अनेक रूप हो गया है, जिस ज्ञानीको इसकी साक्षात्कार-प्रतीति हो गयी है, वह किस प्राणी या पदार्थमें ममता बाँधकर उसको अपना कहेगा या किस प्राणी-पदार्थको पराया समझकर उससे द्वेष ही करेगा? समुद्र किस तरंगको अपनी समझकर उसमें ममता बाँधता है और किस तरंगको परायी समझकर उसे दूर रखता है? क्योंकि सारी तरंगें समुद्ररूप हैं, इसी प्रकार सारे प्राणी ईश्वररूप ही हैं।

एक आदमीने एक घर बनाया। ज्यों-ज्यों घर तैयार होता जा रहा है—त्यों-ही-त्यों उस आदमीके चित्तमें घर-विषयक ममताकी छाप पड़ती जा रही है। घर पूरा तैयार होनेपर चित्तमें छाप भी खूब गहरी पड़ गयी। दैवयोगसे चार-छः महीनेमें उस घरमें आग लग गयी और वह घर नष्ट हो गया। वह मकान जब तैयार हुआ, तब ईश्वरकृत सृष्टिमें कोई वृद्धि नहीं हुई; क्योंकि पंचमहाभूतोंके बने विविध पदार्थ ही घररूप बन गये थे। इसी प्रकार घरका नाश होनेपर उसमें कोई कमी नहीं हुई। जो पंचमहाभूतके पदार्थ घररूपमें दिखलायी पड़ते थे, वे उस रूपको छोड़कर दूसरे रूपमें जा रहे, परंतु मकान-मालिकको शोक हुए बिना नहीं रहेगा; क्योंकि उसने उस घरमें ममता बाँधी थी कि यह घर मेरा है। ममताकी छाप जितनी गहरी होगी, उतना ही दुःख भी अधिक होगा।

अब मान लो कि घर तैयार हो गया और तुरंत ही कोई अच्छा ग्राहक मिल गया तथा उस आदमीने उसको वह घर बेच दिया। बेच डालनेके बाद उस घरमें आग लगी और वह जलकर खाक हो गया, परंतु इससे उस आदमीको कुछ भी दुःख न होगा; क्योंकि उस आदमीने उस मकानके प्रति अपनी ममताकी छाप अपने चित्तसे मिटा डाली। यदि घरके विनाशसे दुःख हुआ होता तो उस आदमीको दोनों हालतोंमें दुःख होना चाहिये था। इस प्रकार 'अन्वयव्यतिरेक युक्तिसे' सिद्ध होता है कि ममताके कारण ही दुःखका अनुभव होता है। अन्वय अर्थात् जहाँ ममता है, वहाँ दुःख भी है। इसलिये पहली हालतमें घर बेचनेके पहले जब आग लगी, तब घरमें ममता थी, इसलिये दुःख भी हुआ और व्यतिरेक यानी अभाव—अर्थात् जहाँ ममता नहीं है, वहाँ दुःख भी नहीं है। इसलिये घर बेचनेके बाद आग लगनेपर उसमें ममता न होनेके कारण दुःख भी नहीं रहा।

एक दूसरा दृष्टान्त लीजिये। एक गृहस्थ है। उसका एक लड़का है, उसको पढ़ा-लिखाकर तैयार किया और यहाँकी पढ़ाई पूरी होनेपर उसको अधिक पढ़नेके लिये विदेश भेजा। वहाँ वह पढ़ने और आनन्द करने लगा, परंतु

किसी शत्रुने ऐसी खबर भेज दी कि वह लड़का मर गया। यह खबर मिलनेपर पिताके हृदयमें जो ममताकी छाप पुत्रके प्रति थी, वह नष्ट हो गयी और इससे उसके दुःखका पार न रहा। अब इससे उलटा दृष्टान्त लीजिये। लड़का सचमुच मर गया है, परंतु इस विषयका समाचार किसीने उसके पिताको न दिया। इस प्रसंगमें लड़का तो मर गया है, परंतु पिताके चित्तमें जो ममताकी छाप है, वह नष्ट नहीं हुई, इससे उसको किसी प्रकारका दुःख भी नहीं हुआ। वह स्वाभाविक रीतिसे खाता है, पीता है, आमोद-प्रमोद करता है। अब यदि लड़केकी मृत्युसे ही दुःख हुआ होता तो इस बार उसे दुःख होना चाहिये था। इससे यह सिद्ध होता है कि दुःख होनेका कारण पुत्रका वियोग नहीं, बल्कि ममताकी छापका मिटना है।

वही लड़का परदेशमें पढ़ता है, परंतु वहाँ उसने दूसरा धर्म ग्रहण कर लिया है और वहीं शादी करके वह रह जाना चाहता है और माता-पिताका मुँह भी नहीं देखना चाहता, बल्कि पितासे द्वेष करता और उसका बुरा चाहता है। यह समाचार जब उसके पिताको मिलता है, तब पिताको क्षणिक आघात तो होता है, पर वह अपने चित्तसे उसके विषयमें जो ममताकी छाप थी, उसे मिटा देता है। ऐसा होनेपर 'पुत्र मरे या जीये' इस विषयमें उदासीन हो जाता है। इसलिये ममता ही दुःखका कारण है।

अबतक हमने यह देखा है कि ईश्वरनिर्मित सृष्टिमें कुछ भी घट-बढ़ नहीं होती। केवल रूपान्तर हुआ करता है। नाम-रूपकी तरंगें पंचभूतके समूहमें उठा करती हैं और नाशको प्राप्त होती हैं और उन तरंगोंको नचानेवाली चेतन सत्ता तो एक और सर्वव्यापक है। दुःख होता है तो केवल ममताके कारण ही। यदि ईश्वरके प्राणी-पदार्थोंमें मनुष्य ममत्व-सम्बन्ध न बाँधे, तो दुःख होनेका दूसरा कोई कारण नहीं है।

अब जीव अपना संसार कैसे बनाता है, यह देखिये—

'जाग्रदादिविमोक्षान्तः संसारः जीवकल्पितः।'

इसका अर्थ यही है कि जीव स्थूलशरीर धारणकर माताके पेटसे निकलकर मरणपर्यन्त 'मेरा-मेरा' करता हुआ प्राणी-पदार्थोंका संग्रह करता है, यह जीवकी कल्पनाका संसार है। अब देखना है कि यह किस प्रकार होता है। ईश्वरने पृथ्वी बनायी तो मनुष्यने, जितनी देख-भाल कर सकता था, उतनी जमीनको घेर लिया और 'यह खेत मेरा है', यह बाग मेरा है—इस प्रकारका ममत्व बाँध लिया। दूसरे मनुष्यने भी वैसा ही किया और फिर कहा कि 'यह खेती-बारी मेरी है और वह तेरी है।' फिर ईश्वर-निर्मित जमीनके नन्हे-नन्हे टुकड़ोंके ऊपर मनुष्योंने ईश्वरके उत्पन्न किये हुए साधनोंके द्वारा ही घर बनाया और उसमें भी यह घर मेरा, यह घर तेरा और वह दूसरेका—इस प्रकार ममत्वका व्यवहार हो गया। आगे चलकर ईश्वरकी ही सृष्टिसे पदार्थोंको ले-लेकर उनमें विविध रूपान्तर करके अनेक प्रकारके सुखके साधन तथा विभिन्न जातिके दुःख देनेवाले और विनाशकारी साधन बनाये और उनमें भी मेरा-तेराका व्यवहार चालू हो गया। मनुष्यसे नया एक तिनका भी पैदा नहीं हो सकता। सृष्टिमें सामग्री है, उसीमें रूपान्तर कर-करके वह विविधताकी रचना करता है और गर्व करता है कि 'यह मैंने किया।' इस प्रकार ईश्वरके बनाये हुए तत्त्वोंमें रूपान्तर करके मनुष्य 'मेरे-तेरे' के संसारकी रचना करता है—यह बात तो हुई जीवके पदार्थसंग्रहके विषयकी। अब प्राणियोंका संग्रह वह किस प्रकार करता है, यह देखना है। जीव जब मनुष्यशरीर धारण करके माताके गर्भसे बाहर निकलता है, तब वह सर्वथा अचेत दशामें रहता है, इसलिये परमात्मा उसकी सँभाल रखनेके लिये उसको एक माता प्रदान करता है। बालक कुछ बड़ा होता है, तब उससे परमात्मा पूछता है—'भाई! यह कौन है?' उत्तर मिलता है—'यह मेरी माँ है।' उसके बाद परमात्माने उसी माँसे दो-चार बच्चे और दे दिये और फिर उससे पूछा—'भाई! ये कौन हैं?' जवाब मिलता है—'ये तो मेरे भाई-बहन हैं।' पश्चात् परमात्मा उसका एक स्त्रीसे ब्याह कराता है और उसके पेटसे दो-तीन बच्चे देता है और फिर पूछता है—'भाई! ये कौन हैं?' जवाब मिलता है—'मैं खुद जाकर इस स्त्रीको ब्याहकर लाया था। क्या आपने नहीं देखा सो यों पूछ रहे हो? और फिर मेरी स्त्रीके पेटसे पैदा हुए बच्चोंके विषयमें तो पूछना ही क्या है?' इस प्रकार अनादिकालसे जीव प्राणियोंका संग्रह करता हुआ चला

आ रहा है और जबतक वह ईश्वरकी वस्तु ईश्वरको नहीं सौंप देता, तबतक उसका भटकना बन्द नहीं होता।

यह जीव-रचित संसार तो उसकी कल्पनामात्र है, इससे इसमें घट-बढ़ होती ही रहती है और इससे अपने संसारमें वृद्धि होनेपर वह आनन्द मानता है तथा हानि होनेपर हाय-हाय करता है। एक बार परमात्माको इस मनुष्यकी स्त्रीकी जरूरत हुई। उसको अपनी सृष्टिका दूसरा काम सौंपना था, इससे परमात्माने उससे कहा—'तुमको दी हुई स्त्री मुझे वापस चाहिये।' तो वह कहता है—'वह तो मेरी है, उसे मैं तुमको क्यों दूँ?' तब परमात्मा उसे थप्पड़ मारकर उसकी स्त्री वापस ले लेता है और वह मनुष्य मुँह बाये रोता खड़ा रहता है।

अब देखो, उस मनुष्यके संसारमें एक मनुष्य कम हो गया, परंतु इससे ईश्वरकी सृष्टिमें कुछ भी फेर-फार नहीं हुआ; क्योंकि वह स्त्री फिर नया शरीर धारणकर अपने नये वेशमें ईश्वरकी सृष्टिमें किसीके संसारमें रहेगी ही।

ईश्वरकृत सृष्टि और जीवकल्पित संसारको एक नाटककी उपमा दें तो ठीक समझमें आ जायगा। सम्पूर्ण नाटक यह ईश्वरनिर्मित सृष्टि है और उसका एक-एक दृश्य जीव-विशेषका संसार है। एक नाटकमें अनेक दृश्य होते हैं। इसी प्रकार प्रत्येक जीवका संसार पृथक्-पृथक् होता है। किसी-किसी दृश्यमें पाँच आदमी अधिक भी आते हैं और किसी-किसी दृश्यमें ऐसा होता है कि दो-चार आदमी उसमेंसे चले भी जाते हैं। किसी दृश्यमें जन्म होता है, तो किसीमें मृत्यु भी होती है। किसीमें लड़ाई होती है, तो किसीमें उत्सव भी मनाया जाता है। इस प्रकार दृश्योंमें विविधता रहती ही है और उनमें घट-बढ़, हानि-लाभ, सुख-दुःख, मान-अपमान, जन्म-मरण आदि भी होते ही रहते हैं; ऐसा न हो तो उसका नाम नाटक नहीं, परंतु सारे नाटकका विचार करें तो कहीं भी घट-बढ़ आदि द्वन्द्व देखनेमें नहीं आते; क्योंकि जो घट-बढ़ दृश्योंमें दीखती थी, वह सच्ची नहीं थी, परंतु ममताके कारण जीवकी अपने-आप कल्पना की हुई थी।

यह जीवकल्पित संसार केवल जीवकी कल्पना ही है, इसलिये अपनी-अपनी कल्पनाके अनुसार प्रत्येक जीवका संसार अलग-अलग ही होना चाहिये। यह संसार यदि सच्चा होता तो शरीरके मरणसे जीवका अपने संसारके साथ सम्बन्ध नहीं छूटता, परंतु हम प्रत्यक्ष देखते हैं कि शरीरके छूट जानेपर उस शरीरके द्वारा रचा हुआ संसार भी छूट जाता है और जीव जब दूसरा शरीर धारण करता है, तब वहाँ भी नया संसार रचता है और गत शरीरके संसारकी उसे स्मृति भी नहीं होती। हमारे सभीके पिछले जन्ममें हमारी कल्पनाके संसार रहे ही होंगे; परंतु आज उनकी स्मृति भी नहीं है, इससे यह समझना चाहिये कि जीवके रचे संसारमें उसकी अपनी कल्पनाके सिवा और कुछ भी नहीं है।

अब देखो, ईश्वरकृत सृष्टि कुछ बन्धनकारक नहीं है। वह तो शरीरके निर्वाहमें तथा सच्ची समझ प्राप्त करनेमें सहायक होती है। बन्धनकारक तो है—'मेरे और तेरेकी कल्पना।' जो ईश्वरका है, उसे 'मेरा' मानकर संसार रचना करनेसे बन्धनकारक होता है। इसीका नाम माया है और जबतक जीव मायाको नहीं छोड़ता, तबतक उसका जन्म-मरण बन्द नहीं होता।

श्रीतुलसीदासजी कहते हैं—***'मैं अरु मोर तोर तैं माया।'*** यानी 'यह मैं और यह मेरा', 'यह तू और यह तेरा'—यही मायाका स्वरूप है। 'मैं और मेरा' छोड़ दे और सब कुछ ईश्वरका है—ऐसा मान ले तो मायाके बन्धनसे जीव मुक्त हो जाय।

श्रीशंकराचार्यजी कहते हैं कि **'अहं ममेति चाज्ञानम्'**—यानी 'मैं और मेरा' की कल्पना ही अज्ञान है। अज्ञान अर्थात् अविद्या या माया।

ज्ञान-अज्ञानकी परिभाषा करते हुए श्रीरामकृष्ण परमहंस कहते हैं कि 'मैं और मेरा' यही अज्ञान है और 'तू और तेरा' यही ज्ञान है।

श्रुति भगवती भी कहती हैं—**'ममेति बध्यते जन्तुर्निर्ममेति विमुच्यते।'** यानी 'मैं और मेरा' यही जन्म-मरणरूपी बन्धनका कारण है और सब कुछ—अपने-आप भी ईश्वरका है, यों माननेका नाम मुक्ति है।

ममताका अर्थ है 'बन्धन' और ममताके त्यागका अर्थ है 'भव-बन्धनसे मुक्ति।' ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः।

साधकोंके प्रति—

अनुभूतिमें बाधा—सुखलोलुपता

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीरामसुखदासजी महाराज)

प्रश्न—भगवत्तत्त्वकी अनुभूति कैसे हो? इसका उत्तर यह है कि आप संयोगजन्य सुखकी आसक्ति मिटाइये तो अभी अनुभव हो जाय। संयोगजन्य सुखमें जो आकर्षण है, यही मुख्य बीमारी है। विचार करनेसे यह बात ठीक समझमें आती है कि इस संयोगजन्य सुखकी लालसाने ही भगवत्तत्त्वकी अनुभूति नहीं होने दी है। संयोगजन्य सुख अर्थात् पदार्थों, व्यक्तियों, परिस्थितियों, घटनाओंके सम्बन्धसे जो सुख मिलता है, वह नित्य निरन्तर कैसे रहेगा? क्योंकि जिनके सम्बन्धसे सुख मिलता है, वे उत्पन्न और नष्ट होनेवाले हैं तो इनके सम्बन्धसे अनुत्पन्न सुख कैसे मिलेगा? इसलिये संयोगसे मिलनेवाला सुख असह्य हो जाय, कृत्रिम सुखका त्याग कर दिया जाय, तो वह सहज सुख स्वत: प्रकट हो जायगा, स्वाभाविक सुखकी स्वत: अनुभूति हो जायगी; क्योंकि यह स्वयं सुखस्वरूप है—

ईस्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥

जबतक अस्वाभाविक सुखका त्याग नहीं करेंगे, तबतक—हमारा सम्बन्ध संसारसे नहीं है, परमात्मासे हमारा स्वत:सिद्ध सम्बन्ध है—यह बात सुनते रहनेपर भी काम नहीं आयेगी। संसार नाशवान् है, क्षणभंगुर है—ऐसी बातें सुन लें, याद कर लें, पर अनुभव नहीं होगा, संसार असत्य है—इस प्रकार संसारको असत्य कहनेसे, इस बातको सीख लेनेसे, याद करनेसे, संसारका सम्बन्ध नहीं छूटता। तात्पर्य है कि संसारको असत्य मान लेनेपर भी जबतक असत्यके द्वारा संयोगजन्य सुख लेते रहेंगे, तबतक संसारकी असत्यताका अनुभव नहीं होगा; कारण, आप असत्यके संयोगजन्य सुखको सत् मानते हैं और उस सुखको लेनेके लिये लोलुप रहते हैं, तो आप संसारकी असत्यताका कैसे अनुभव कर सकते हैं?

प्रत्यक्ष बात है कि संयोगजन्य सुख लेनेसे दु:ख भोगना ही पड़ता है। कोई भी प्राणी ऐसा हो ही नहीं सकता, जो संयोगजन्य सुख तो भोगता रहे और उसे दु:ख भोगना न पड़े, अर्थात् दु:खसे बचना उसके लिये असम्भव बात है। बहुत दु:ख भोगना पड़ेगा और निश्चय ही भोगना पड़ेगा। यह सब जानते हुए भी मनुष्य सुखकी इच्छा क्यों नहीं छोड़ता है—बात क्या है? वर्तमानमें संयोगसे जो सुख होता है, उसका जितना आकर्षण है, उसकी जितनी प्रियता है और उसपर जितना विश्वास, भरोसा है, उतना परिणामपर विचार नहीं है। इसका विचार ही नहीं करते कि इस सुखासक्तिका परिणाम क्या होगा? मनुष्यको विचार आता भी है तो वह आँख मीच लेता है अर्थात् वह उस परिणामको ठीकसे जानना नहीं चाहता। इसलिये भगवान्‌ने राजसी सुखका वर्णन करते हुए कहा है कि विषयेन्द्रिय-संयोगजन्य सुख प्रारम्भमें अमृतके तुल्य और परिणाममें विषकी तरह है—**'विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्। परिणामे विषमिव'** (गीता १८। ३८) इसके परिणामका विचार मनुष्य ही कर सकता है; क्योंकि अन्य प्राणियोंको यह विवेक-शक्ति प्राप्त नहीं है, जिससे वे कर सकें। देवतालोग सुखके लिये ही देवलोकमें रहते हैं, उनका उद्देश्य ही भोगोंसे सुख लेनेका है, इसलिये वे इसके परिणामको क्या जानेंगे? इसे जाननेकी शक्ति मनुष्य-शरीरमें ही है। इसलिये मनुष्यको चाहिये कि इस संयोगजन्य सुखके परिणामकी ओर निरन्तर दृष्टि रखे। सतत सोचे कि इसका परिणाम क्या होगा?

सांसारिक सुखका परिणाम दु:ख होगा ही। भगवान्‌ने गीतामें कहा है कि **'ये हि संस्पर्शजा भोगा दु:खयोनय एव ते'** (५। २२)। जितने सम्बन्धजन्य सुख हैं, वे सब-के-सब दु:खोंके उत्पत्तिस्थान हैं। संसारमें जितने भी दु:ख होते हैं, जेल होता है, अपयश होता है, अपमान होता है, रोग होते हैं, शोक होता है, चिन्ता होती है, व्याकुलता होती है, घबराहट होती है, बेचैनी होती है और नरकोंमें दु:ख पाते हैं—ये सब-के-सब दु:ख संयोगजन्य सुखकी लोलुपताके ही परिणाम हैं। इसलिये यह सुखलोलुपता ही मुख्य बीमारी है।

सुख इतना बाधक नहीं है, जितनी सुखकी

लोलुपता बाधक है। सुख मिल जाय, सुख ले लूँ—यह इच्छा जितनी बाधक है, उतना सुख बाधक नहीं है। कारण, सुख बेचारा आता है, चला जाता है, पर लोलुपता ज्यों-की-त्यों बनी रहती है। सुख नहीं है, उस समय भी लोलुपता रहती है कि सुख मिले। सुख है, उस समय भी उसकी प्रियता रहती है और सुख चला जाय तो भी उसके लिये प्रियता, आकर्षण, लोलुपता बनी रहती है। वास्तवमें यही है बीमारी! गीता (५।६)-में भगवान्‌ने इसको दूर करनेका सरल उपाय बताया है—

संन्यासस्तु महाबाहो दुःखमाप्तुमयोगतः।
योगयुक्तो मुनिर्ब्रह्म नचिरेणाधिगच्छति॥

'योगके बिना संन्यास अर्थात् सांख्ययोग प्राप्त करना कठिन है और योगयुक्त मुनि बहुत शीघ्र ब्रह्मको प्राप्त हो जाता है।'

'योगयुक्त किसे कहते हैं?' '**समत्वं योग उच्यते**' (गीता २।४८)। भगवान्‌ने समताको योग बताया है। समताका अर्थ है—सुख मिले, चाहे दुःख मिले, लाभ हो जाय, चाहे हानि हो जाय, कोई पैदा हो जाय, चाहे कोई मर जाय, बीमारी आ जाय, चाहे स्वस्थ हो जाय, मान हो जाय, चाहे अपमान हो जाय, निन्दा हो जाय, चाहे स्तुति हो जाय—ये जो सुख-दुःख आदिक द्वन्द्व हैं, इनसे अपनेमें कोई विकृति न आवे, इसका नाम है 'योग'। उस समतामें यदि स्थित रह जाय और इस सुख-लोलुपतासे बच जाय तो बहुत शीघ्र ब्रह्मकी प्राप्ति हो जाय, देरीका काम नहीं।

अब प्रश्न उठता है कि इसको काममें कैसे लायें? इसके लिये एक बात आप धारण कर लें कि दूसरोंको सुख कैसे पहुँचे? दूसरोंका हित कैसे हो? हर काममें दूसरोंका आराम, भला, हित, सुख कैसे हो—यह सोचने लग जायँ। यह बात ठीकसे आपकी समझमें आ जाय और आप उसे ठीक तरहसे करने लग जायँ तो बहुत शीघ्र आप इस संयोगजन्य सुखकी लोलुपतासे छूट जायँगे।

हमें तो इस बातका दुःख है कि आपलोग सत्संग तो करते हैं, पर सत्संगमें गहरे उतरकर विचार नहीं करते। साधन करते हैं तो केवल ऊपरी पाखण्डकी तरह करते हैं। यद्यपि सत्संग करना, साधन करना दम्भ नहीं है, पाखण्ड नहीं है, पर दिखावटीपनसे वास्तविक सत्संग नहीं होता। सेवा करे तो उसमें भी दिखावटीपन। दूसरोंको सुख कैसे मिले, इसके लिये हार्दिक लगन नहीं है। यदि भीतरसे यह लगन लग जाय कि दूसरोंको सुख कैसे हो तो अपने सुखकी इच्छा छूट जायगी। एक ही बात रहे कि दूसरोंको सुख देनेके लिये अपना तन, मन, धन सभी खर्च करें। हमारा धन भी उधर लग जाय, हमारा मन भी उधर लग जाय और शरीरसे भी उन्हींके सुखके लिये हम श्रम करें। दूसरोंको सुख हो जाय, ऐसी लगन लग जाय तो उपर्युक्त प्रश्न हल हो जायगा।

तात्पर्य यह कि इस सुख-लोलुपताको मिटानेके लिये दूसरोंको सुख पहुँचाना है, गरीबोंको सुख पहुँचाना है, सबको सुख पहुँचाना है—यह उद्देश्य रखकर यदि आपलोग सेवाके काममें लग जायँ तो हमें तो विश्वास है कि आपको लाभ अवश्य होगा। लाभ नहीं भी होगा तो हानि तो होगी ही नहीं। हानि दीखे तो मत लगिये, हानि न दीखे तो ऐसा करके देखिये।

'सबको सुख पहुँचे'—यह सेवक-धर्म है। सेवा किसे कहते हैं? सेवामें सेवकपनेका जरा भी अभिमान न हो और जिन साधनोंसे सेवा की जाय, उनको कभी अपना न माना जाय अर्थात् अपने कहे जानेवाले शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, योग्यता आदि किसीको भी अपनी न माने। जिनकी सेवा की जा रही है, उन्हींकी वस्तुएँ उन्हींके काममें लग रही हैं—ऐसा भाव रहे। सेवासे मुझे उत्पन्न और नष्ट होनेवाली कोई वस्तु मिल जाय—यह भाव ही मनमें न आवे। इसका नाम 'सेवा' है। यह सेवा-धर्म बड़ा गहन है—'**सेवाधर्मः परमगहनो योगिनामप्यगम्यः**'। भरतजी महाराजने भी कहा है—***'सब तें सेवक धरम कठोरा॥'*** इसीको 'कर्मयोग' कहते हैं।

सेवा करनेवालोंमें भी सच्ची लगनसे सेवा करनेवाले बहुत थोड़े होते हैं। अभी जो लोग सेवा कर रहे हैं, उन्हें किस रीतिसे सेवा करनी चाहिये, यह बात बताता हूँ।

सबसे पहले अपने मनकी प्रधानता छोड़ दे। अपना आग्रह बिलकुल ही छोड़ दे, केवल सेव्यके मनकी ओर देखे कि वे कैसे प्रसन्न होंगे, किस तरहसे उन्हें सुख पहुँचे, उनका कैसे भला हो, उनका हित कैसे हो—एकमात्र यही उद्देश्य रह जाय तो गीता कहती है कि सब प्राणियोंके हितमें जो रत हैं, वे परमात्माको प्राप्त होते हैं—**'ते प्राप्नुवन्ति मामेव सर्वभूतरहिते रताः।'** (१२।४) तात्पर्य है कि जो दूसरोंको, प्राणिमात्रको सुख पहुँचानेमें लगे हुए हैं, वे परमात्मतत्त्वकी प्राप्ति कर लेते हैं।

व्याख्यान देते हुए कई वर्षोंसे हमारे मनमें यह प्रश्न उठता था कि यह कामना कौन-सी बीमारी है? इसके नाशका उपाय क्या है? इसकी जड़ कहाँ है? किस जगहसे यह ठीक होगी? अब कई वर्षोंसे यह बात ध्यानमें आयी है कि दूसरोंको सुख, आराम पहुँचाना ही इसके मिटानेका मुख्य उपाय है। ऐसे ही व्याख्यान देते वर्षों बीत गये, पर यह बात पकड़में नहीं आयी थी कि कामनाका क्या स्वरूप है? अब यह बात ध्यानमें आयी है कि अपनी मनमानी चाहना ही कामना है और अपनी कामनाके मिटानेका मुख्य उपाय यह है कि दूसरेके मनके अनुकूल करे, पर वह न्याययुक्त हो, शास्त्रसम्मत हो और अपनी सामर्थ्यके अनुरूप हो—ऐसी बात उनके मनकी पूरी हो। इस विषयमें किसीको शंका हो तो वह जाँच ले। जहाँ जिस क्षेत्रमें रहिये, इस उपायको करके देखिये। इस उपायको काममें लाकर जाँच लीजिये। जैसे गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजने रामायणमें कहा है—

कामिहि नारि पिआरि जिमि लोभिहि प्रिय जिमि दाम।

जैसे लोभीको पैसा प्यारा लगे, कामीको कामिनी प्यारी लगे, इसी तरहसे हमें भी दूसरोंका हित प्यारा लगने लगे। दूसरेको आराम कैसे हो? मेरेद्वारा किसीको भी कष्ट न पहुँचे, सुख ही पहुँचे—केवल यह लगन रहे। फिर देखो तमाशा! बहुत शीघ्र काम होगा। यह बड़े महत्त्वका साधन है। वर्षोंतक विचार और चिन्तन करनेपर यह साधन मिला है। नारायण! नारायण!! नारायण!!!

श्रीराधा-कृष्ण-महारास-लीलाकी साक्षी 'शरत्पूर्णिमा'

(श्रीअर्जुनलालजी बन्सल)

पावस ऋतुके विदा होनेपर शरद्-ऋतुका आगमन हुआ। एक समयकी बात है, संध्याके समय गगन-मण्डल सुरमई आभासे रचने लगा। ग्वाल-बालोंने गोवंशको वनसे लाकर खिरकमें बाँध दिया। इस समय सारी गोपियाँ अपने घरोंके काम-काजमें व्यस्त हैं। कुछ गोपियाँ खिरकमें जाकर गायोंका दुग्ध-दोहन करने लगी हैं, किसी-किसी गोपीने उबलनेके लिये दूधकी हाँड़ी चूल्हेपर रख दी, कोई गोपी अपने शिशुको स्तनपान कराने लगी, कोई अपने संध्याकालीन शृंगारमें लगी है, कोई भगवान्‌की पूजा-अर्चना कर रही है, तो कोई अपने पतिको भोजन करा रही है।

इस प्रकार अपना-अपना कर्तव्य-पालन करते हुए अर्धरात्रिका समय हो गया। सहसा ही,

जबहीं वन मुरली स्रवन परी।
थकित भई गोप कन्या सब, काम धाम बिसरी॥
कुल मर्जाद, बेद की आज्ञा, नैकहुँ नाहिं डरी।
स्याम सिन्धु सरिता ललना, गन जल की ढरनि ढरी॥
अंग मरदन करिवै को लागी, उबटन तेल धरी।
जो जिहिं भांति चली सो तैसेहिं, निसि वन कौं जु खरी॥
सुत पति नेह भवन जन संका, लज्जा नाहिं करी।
सूरदास प्रभु मन हरि लीन्हौ, नागर नवल हरी॥

गोपियोंको चीर-हरणके समय श्रीकृष्णके वचनोंका स्मरण हो आया, जब उन्होंने कहा था, कि महारासके समय मैं तुम्हारी मिलनकी आकांक्षा पूरी करूँगा, आज श्रीकृष्ण वह वचन साकार करने लगे हैं। आज शरद् पूर्णिमा है। वनमें श्रीकृष्णकी मुरली मुखरित हो उठी, उस मधुर ध्वनिको सुनकर उन्हें आभास हो गया कि आज प्रियतमसे मिलनकी बेला है, वे सारा कामकाज छोड़कर वनकी ओर चलने लगीं। घरसे निकलते समय कुलकी मर्यादा और वेदकी आज्ञाको बिसारनेसे भी

संकोचका अनुभव नहीं हुआ। श्यामसुन्दर सागर हैं, ब्रजबालाएँ नदियाँ हैं, जैसे प्राकृतिक रूपसे नदियोंका प्रवाह सागरकी ओर गमनशील रहता है, उसी प्रकार ये गोपियाँ भी श्रीकृष्णकी ओर चली जा रही हैं। पुत्र और पतिका प्रेम तथा लज्जाका इन्होंने त्याग कर दिया है।

इस समय ये गोपियाँ इतनी बेसुध हो गयी थीं कि इन्हें अपने शरीरका भी भान नहीं रहा, श्रीमद्भागवत (१०।२९।७)-में लिखा है—

लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या अञ्जन्त्यः काश्च लोचने।
व्यत्यस्तवस्त्राभरणाः काश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः॥

कोई गोपी अपने शरीरपर केसर-चन्दनका लेप कर रही थी, नयनोंमें काजल लगा रही थी अथवा नये वस्त्र धारण कर रही थी, या अपना शृंगार कर रही थी, उन सबने श्रीकृष्ण-मिलनकी उत्सुकतामें सारे कार्य अधूरे ही छोड़ दिये। प्रेमदीवानी इन गोपियोंमें किसीने ओढ़नीको कमरमें बाँधा, किसीने लहंगा सिरपर ओढ़ लिया, किसीने गलेका हार कमरमें लटका लिया और किसीने करधनी गलेमें पहन ली और चल पड़ीं परमप्रीतमसे मिलने।

पागलोंकी भाँति दौड़ती हुई इन गोपियोंको उनके परिजनोंने रोकना चाहा, परंतु जैसे नदीकी तीव्र जलधारा सागरमें विलीन होनेको तटोंके बन्धन तोड़ देती है, उसी प्रकार ये गोपियाँ आज परिवारके बन्धन तोड़ आधी रातके समय निर्भय होकर श्रीकृष्णसे मिलनकी आस लिये गहन वनमें उनके पास पहुँच गयीं।

उन्हें देखकर परीक्षाके उद्देश्यसे श्रीकृष्ण कहने लगे, हे गोपियो,

मातु पिता तुम्हरे धौं नाहीं।
बारम्बार कमलदल लोचन, यह कहि कहि पछिताहीं॥
उनकैं लाज नहीं वन तुमको, आवत दीन्ही राति।
सब सुन्दर सबै नवजोवन, निठुर अहीर की जाति॥
की तुम कहि आई की ऐसेहिं कीन्ही कैसी रीति।
सूर तुमहि यह नही बूझिये, करी बड़ी विपरीति॥

क्या तुम्हारे माता-पिता नहीं हैं, जो तुम इस सुनसानमें यहाँ चली आयीं। यदि वे हैं तो उन्होंने रोका क्यों नहीं? और यदि रोका भी होगा, तो निश्चय ही तुम सब उनकी अवहेलना करके आयी हो। जरा विचार करो, तुम सारी ब्रजबालाएँ सुन्दर हो, नवयौवना हो, क्या तुम्हारी जातिमें युवा बहू-बेटियोंको रात्रिमें बाहर निकलनेपर लज्जा नहीं आती। यदि तुम्हारे परिजन यहाँ आनेके बारेमें अनभिज्ञ हैं, तो तुम्हारा यह आचरण वेद और कुलकी मर्यादाके अनुकूल नहीं है, अतः उचित यही है कि तुम सभी इसी समय अपने घरोंको लौट जाओ।

श्रीकृष्णके मुखसे ऐसे अप्रिय वचन सुनकर गोपियाँ कहने लगीं, हे नाथ!

तुम पावत हम घोष न जाहिं।
काह जाइ लैहैं हम ब्रज, यह दरसन त्रिभुवन नाहिं॥
तुमहूँ तै ब्रज हितु न कोऊ, कोटि कहो नहिं मानै।
काके पिता, मातु है काकी, काहूँ हम नहिं जानै॥
काके पति, सुत मोह कौन कौ, घरही कहा पठावत।
कैसो धर्म, पाप है कैसो, आप निरास करावत॥
हम जानैं केवल तुमहीं कौ, और वृथा संसार।
सूर स्याम निठुराई तजिये, तजिये वचन विकार॥

तुम्हारा दर्शन पाकर अब हम अपने गाँव लौटकर नहीं जायँगी। इस समय जो हमें सौभाग्य मिला है, वह तीनों लोकोंमें भी नहीं मिल सकता। हे कृष्ण! सम्पूर्ण ब्रजमण्डलमें तुम्हारे सिवाय हमारा कोई भी हितैषी नहीं है। तुम भले ही करोड़ों बार हमें जानेको कहो, हम तुम्हें छोड़कर नहीं जायँगी। इस संसारमें कौन किसका पिता, कौन किसका पति, किस पुत्रका मोह? तुम किसका वास्ता देकर हमें निराश करना चाहते हो? हम इस सम्पूर्ण सृष्टिमें केवल तुम्हें ही जानते हैं, तुम्हें ही पहचानते हैं। इसलिये हे माधव! हमारे प्रति अप्रिय वचन और निष्ठुरता त्यागकर हमें अपना लीजिये।

गोपियोंके मुखसे ऐसे करुण वचन सुनकर श्रीकृष्णने कहा—हे ब्रजसुन्दरियो! मैं तुम्हारी भावना-साधनासे अत्यन्त प्रभावित हुआ हूँ, तुमने जिस फलकी प्राप्तिके लिये कठोर तपस्या की थी, आज वह फलीभूत हो रही है। आओ, मैं तुम्हारी कामनापूर्तिके लिये महारासकी रचना करता हूँ।

रासपंचाध्यायी-प्रकरणमें इस लीलाका सरस वर्णन

करते हुए श्रीमद्भागवत (१०। २९। ४५)-में लिखा है—

नद्याः पुलिनमाविश्य गोपीभिर्हिमवालुकम्।
रेमे तत्तरलानन्दकुमुदामोदवायुना॥

भगवान् श्रीकृष्णकी प्रसन्नताके लिये यमुनापुलिनपर वंशीवटकी सुरम्य भूमिपर विश्वकर्माजीने अनुपम रासस्थलीका निर्माण कर दिया, इसे कामदेव और रतिने मिलकर अतिशय सौन्दर्यसे परिपूर्ण कर दिया। रासका उचित समय जानकर श्रीकृष्णने अपनी आह्लादिनी शक्ति श्रीराधारानी और ब्रजबालाओंके संग इस दिव्य रासमण्डलमें प्रवेश किया। यह पुलिन यमुना की शीतल तरंगों और सुगन्धित वायुसे परिसेवित था। इस प्रकारके आनन्दप्रद वातावरणमें रासमण्डलके मध्यमें श्रीराधा-कृष्ण और उनके चारों ओर गोलाकार घेरेमें गोपियाँ खड़ी हो गयीं।

श्रीकृष्णका संकेत पाकर आकाशमें स्थित देवोंने वाद्य-वादन प्रारम्भ कर दिया, वंशीधरकी वंशी मुखरित हो उठी, श्रीराधारानीके पायलकी झंकार साकार हो उठी, गोपियाँ नृत्य करने लगीं। महारास-लीलाका शुभारम्भ हुआ। इस मनोहारी लीलाका सजीव वर्णन करते हुए सूरदासजीने लिखा है—

मानो माई घन घन अंतर दामिनि।
घन दामिनि दामिनि घन अंतर, शोभित हरि ब्रज भामिनि॥
जमुन पुलिन मल्लिका मनोहर, सरद सुहाई जामिनि।
सुन्दर ससि गुन रूप राग निधि, अंग अंग अभिरामिनि॥
रच्यौ रास मिलि रसिक राइ सौं, मुदित भईं गुन ग्रामिनि।
रूप निधान स्याम सुन्दर घन, आनँद मन विस्रामिनि॥
खंजन-मीन, मयूर, हंस, पिक, भाइ भेद गज-गामिनि।
को गति गनै सूर मोहन संग, काम बिमोह्यौ कामिनि॥

शरत्पूर्णिमाके पावन अवसरपर यमुना-पुलिनपर रचे महारासमें श्रीकृष्ण और गोपियाँ इस प्रकार सुशोभित हैं, मानों बादल (श्रीकृष्ण)-के मध्य दामिनि (गोपियाँ) हों और बिजुरीके मध्य बादल हों। श्रीकृष्णके चारों ओर गोपियाँ इतनी तीव्र गतिसे नृत्य कर रही हैं कि इन्हें देखकर ऐसा आभास होने लगा; जैसे—हर गोपीके संग एक-एक कृष्ण हों। यमुनाका सुन्दर तट, मनोहारिणी सुगन्धित वायु, भूमिपर चारों ओर छिटकती चाँदनी और इसी चाँदनीसे शृंगारित रात्रिमें सुन्दर मुखवाली, गुण, रूप और प्रेमनिधिसे युक्त, अंग-अंगमें अनुपम सौन्दर्यकी छटासे सम्पन्न गोपियोंने रसिकराज श्रीकृष्णके संग रासकी रचना की। वे गोपियाँ मयूर और कोयलके समान मृदुभाषिणी हैं, हंसके समान इनकी गति है। ऐसी कामसे विमोहित गोपियोंने स्वयं श्रीकृष्णको भी मोहित कर लिया।

इस अलौकिक महारास-लीलाको गति प्रदान करते हुए हित हरिवंशजीने सजीव चित्रण करते हुए लिखा है—

आजु बन नीकौ रास बनायौ।
पुलिन पवित्र सुभग जमुना तट, मोहन बेनु बजायौ॥
कल कंकन-किंकिन नूपुर धुनि, सुनि खग मृग सचु पायौ।
जुबतिन मंडल मध्य स्याम घन, सारंग राग जमायौ॥
ताल मृदंग उपंग मुरज ढफ, मिलि रससिन्धु बढ़ायौ।
विविध विसद वृषभानुनंदिनी, अंग सुढंग दिखायौ॥
अभिनय निपुन लटकि लट लोचन, भ्रकुटि अनंग नचायौ।
ततथेई-ताथेई धरति नवल गति, पति ब्रजराज रिझायौ॥
परिरंभन चुंबन आलिंगन, उचित जुबति जन पायौ।
बरसत कुसुम मुदित नभ नायक, इन्द्र निसान बजायौ।
हित हरिवंश रसिक राधा पति, जस बितान जग छायौ॥

शरत्पूर्णिमाके अवसरपर रचाये रास और उसकी रस-माधुरीका वर्णन करना वाणीका विषय नहीं, अपितु भाव-समाधिमें लीन रहकर ही इसकी दिव्यता और माधुर्यका साक्षात्कार करना सम्भव है।

कहा जाता है कि श्रीराधा-माधवके संग ब्रजललनाओंकी इस माधुरी महारास-लीलाके दर्शनपर मोहित हो चन्द्रदेव छः माहपर्यन्त आकाशके मध्यमें स्थिर रहे। सूर्यदेवकी करुण पुकार सुन भगवान् श्रीकृष्ण इस लीलाका समापन करते हुए श्रीराधाको अपने संग ले रासमंडलके मध्यसे अन्तर्धान हो गये। गोपियाँ भी उस महारासकी स्मृति मनमें सँजोये अपने-अपने गाँव चली गयीं। इस प्रकार यह महारासलीला सम्पन्न हुई। वंशीवट आज भी उसका साक्षी है।

श्रीरामचरितमानसमें संग-प्रभाव

(डॉ० श्रीफूलचन्द प्रसादजी गुप्त, सम्पादक 'योगवाणी')

गोस्वामी तुलसीदासद्वारा विरचित श्रीरामचरितमानस मानव-कर्तव्यबोधक महाकाव्य है। यद्यपि भगवान् श्रीरामके शील, सौन्दर्य और शक्तिको उद्भासित करना गोस्वामीजीका अभीष्ट है, परंतु इन गुणोंके प्राकट्यके क्रममें उन्होंने परिवार, समाज और देशके प्रति मानव-कर्तव्यका निर्धारण भी किया है। श्रीरामचरितमानसमें कर्तव्य-निर्धारणके क्रममें संग-प्रभावका वर्णन बहुत ही प्रभविष्णु है। गोस्वामीजी कहते हैं कि पदार्थ अपनी पूर्वावस्था या प्रथमावस्थामें शुद्ध होता है, परंतु संग-प्रभावसे भूषित और दूषित होता है। शिशुरूपमें मानव भगवान्का रूप होता है। उसमें सम-दृष्टि होती है। प्रेम-रूप वही बालक संग-प्रभावसे सद्गुणों और दुर्गुणोंको प्राप्त करता है। देवर्षि नारदकी संगति प्राप्तकर बालक ध्रुव भगवान् विष्णुका प्रियभाजन बना और उन्हींकी संगतिके प्रभावसे प्रह्लाद भगवान् विष्णुकी भक्तिका अधिकारी हुआ। सत्य ही है—**'सत्संगतिः कथय किं न करोति पुंसाम्'**। अर्थात् सत्संगति मनुष्यके लिये क्या नहीं कर सकती, परंतु नीचकी संगति व्यक्तिको अधोगामी बना देती है। संसर्गसे ही गुण-दोष उत्पन्न होते हैं—**'संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति'**। स्वाति नक्षत्रकी बूँद केलेके पत्तेपर पड़नेपर 'कपूर', सीपमें पड़नेपर मोती और सर्पके मुखमें पड़नेपर 'विष' बन जाती है। संगतिके पूर्व वह शुद्धावस्थामें होती है। गोस्वामीजी कहते हैं—

ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहिं कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग॥

(रा०च०मा० १।७ (क))

अर्थात् ग्रह, ओषधि, जल, वायु और वस्त्र—ये सब भी कुसंग और सुसंग पाकर संसारमें बुरे और भले पदार्थ हो जाते हैं। विचारशील पुरुष ही इस बातको जान पाते हैं। इसके पूर्व ही गोस्वामीजीने इस बातको इस उदाहरणके द्वारा स्पष्ट कर दिया है।

गगन चढ़इ रज पवन प्रसंगा। कीचहिं मिलइ नीच जल संगा॥
साधु असाधु सदन सुक सारीं। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारीं॥

(रा०च०मा० १।७।९-१०)

ऊर्ध्वगामी पवनके संगसे धूल आकाशपर चढ़ जाती है और वही नीचेकी ओर बहनेवाले जलके संगसे कीचड़में मिल जाती है। साधुके घरके तोता-मैना राम-राम उच्चारते हैं और असाधुके घरके तोता-मैना गालियाँ देते हैं। गोस्वामीजी आगे कहते हैं कि कुसंगके कारण धुआँ कालिख कहलाता है, वही धुआँ सुसंगसे सुन्दर स्याही होकर पुराण लिखनेके काम आता है और वही धुआँ जल, अग्नि और पवनके संगसे बादल होकर जगत्को जीवन देनेवाला बन जाता है।

धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवन दाता॥

(रा०च०मा० १।७।११-१२)

सुसंग-कुसंगका जीवनपर व्यापक प्रभाव पड़ता है। श्रीमद्भगवद्गीतामें भगवान्का सत्प्रेरक प्रवचन ध्यातव्य है, जिसमें उन्होंने तीनों गुणोंकी संगतिके प्रभावका वर्णन किया है। भगवान् कहते हैं कि सत्त्वगुणके संगसे देवयोनिमें एवं रजोगुणके संगसे मनुष्ययोनिमें और तमोगुणके संगसे पशु आदि नीच योनियोंमें जन्म होता है।

पुरुषः प्रकृतिस्थो हि भुङ्क्ते प्रकृतिजान्गुणान्।
कारणं गुणसङ्गोऽस्य सदसद्योनिजन्मसु॥

(गीता १३।२१)

अर्थात् प्रकृतिमें स्थित ही पुरुष प्रकृतिसे उत्पन्न त्रिगुणात्मक पदार्थोंको भोगता है और इन गुणोंका संग ही इस जीवात्माके अच्छी-बुरी योनियोंमें जन्म लेनेका कारण है।

सत्त्वात्सञ्जायते ज्ञानं रजसो लोभ एव च।
प्रमादमोहौ तमसो भवतोऽज्ञानमेव च॥

(गीता १४।१७)

सत्त्वगुणसे ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगुणसे निःसन्देह लोभ तथा तमोगुणसे प्रमाद एवं मोह उत्पन्न होते हैं और अज्ञान भी होता है। निःसन्देह सुसंगके प्रभावसे व्यक्ति ऊर्ध्वगामी और कुसंगसे अधोगामी होता है। गोस्वामीजी मानस (१।५७ (ख))-में कहते हैं—

जलु पय सरिस बिकाइ देखहु प्रीति कि रीति भलि।
बिलग होइ रसु जाइ कपट खटाई परत पुनि॥

जल भी दूधके साथ मिलकर दूधके समान भाव बिकता है, परंतु खटाईका संग पाकर दूध फट जाता है और स्वादहीन हो जाता है।

दोहावलीमें भी गोस्वामीजीने संग-प्रभावको रेखांकित किया है—

संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कबि कोबिद श्रुति पुरान सदग्रंथ॥

(दोहावली ३४०)

सन्तोंका संग मोक्षका और विषयी पुरुषोंका संग संसारबन्धनमें पड़नेका मार्ग है। इस बातको सन्त, कवि, ज्ञानी और वेद-पुराणादि सद्ग्रन्थ सभी कहते हैं।

संग-प्रभावको स्पष्ट करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं कि सुसंगसे मनुष्य अच्छा और कुसंगसे बुरा हो जाता है। जो लोहा नावमें लगनेसे सबको पार उतारनेवाला और सितारमें लगनेसे मधुर संगीत सुनाकर सुख देनेवाला बन जाता है, वही तलवार और तीरमें लगनेसे जीवोंका प्राणघातक हो जाता है।

तुलसी भलो सुसंग तें पोच कुसंगति सोइ।
नाउ किंनरी तीर असि लोह बिलोकहु लोइ॥

(दोहावली ३५८)

गोस्वामीजी कहते हैं कि बड़ोंकी संगतिसे मनुष्य बड़ा और छोटोंकी संगतिसे उसीका नाम छोटा हो जाता है। धर्म, अर्थ और मोक्षके साथ रहनेसे 'काम' की भी गिनती चार पदार्थोंमें होती है।

गुरु संगति गुरु होइ सो लघु संगति लघु नाम।
चार पदारथ में गनैं नरक द्वारहू काम॥

(दोहावली ३५९)

सुसंगमें रहकर मनुष्य मोक्षका अधिकारी बन जाता है, वहीं कुसंग प्राप्तकर नरकका भागी बनता है। मनुष्यको सत्संगतिमें रहना चाहिये। जीवन-लक्ष्यकी प्राप्तिमें सुसंगका विशेष महत्त्व है। अच्छी संगति मनुष्यको उच्चासन प्रदान करती है।

गोस्वामीजीने कुसंगको भयानक बुरा रास्ता कहा है—***'कठिन कुसंग कुपंथ कराला'*** (बालकाण्ड ३८।७) श्रीरामकथा-क्रममें कैकेयीको शुद्धमति दर्शाया गया है। वही शुद्धमति कैकेयी मन्थराकी कुसंगति पाकर अपनी बुद्धिका क्षय कर लेती हैं। गोस्वामीजी कहते हैं—***'को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मतें चतुराई॥'*** (अयोध्याकाण्ड २४।८) बादलका जल धूलसे मिलते ही गन्दा हो जाता है—***'भूमि परत भा ढाबर पानी। जनु जीवहि माया लपटानी॥'*** (किष्किन्धाकाण्ड १४।६)

कबहुँ दिवस महँ निबिड़ तम कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसइ उपजइ ग्यान जिमि पाइ कुसंग सुसंग॥

(रा०च०मा० ४।१५ (ख))

अतः दुष्टकी संगति दुःखदायी होती है और मनुष्यके जीवन-लक्ष्यमें बाधा बनती है। एक प्रसंगमें भगवान् श्रीराम विभीषणसे कहते हैं—***'बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥'*** (सुन्दरकाण्ड ४६।७) हे तात! नरकमें रहना अच्छा है, परंतु विधाता दुष्टका संग कभी न दे। दुष्टोंका संग सदा दुःख देनेवाला होता है। जैसे हरहाई गाय कपिला गायको अपने संगसे नष्ट कर देती है। भगवान् श्रीरामजीने कुसंगके प्रभावको भरतजीको समझाते हुए यह बात कही—***'तिन्ह कर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई॥'*** (उत्तरकाण्ड ३९।२) दुष्टोंके संगसे किसीके सुबुद्धि उत्पन्न हुई। काकभुशुण्डिजीने गरुड़जीसे कहा—***'काहू सुमति कि खल सँग जामी।'*** (उत्तरकाण्ड ११२।४) गोस्वामीजीने श्रीरामचरितमानसमें कुसंगके प्रभावको प्रसंगवश और भी उपदेशात्मक वर्णन किया है।

कुसंगमें पड़कर मनुष्य अपना सर्वनाश कर डालता है। उसका धन और स्वास्थ्य तो नष्ट होता ही है, साथ ही वह कुमार्गपर चलकर आत्मोन्नतिसे हाथ धो बैठता है। उसके मानसमें अनीति और अशुभ प्रवृत्तियाँ जाग्रत् हो जाती हैं। विचार-शक्तिके क्षीण हो जानेके कारण वह उचित मार्गसे भ्रष्ट होकर पतनोन्मुख हो जाता है। एक बार पतनके गर्तमें गिरनेके बाद वह उससे उबर नहीं पाता। अतः व्यक्तिको कुसंगसे बचना चाहिये।

गोस्वामीजीने सत्संगतिकी महिमाका भी गान किया है। उन्होंने सत्संगतिको आनन्द और कल्याणकी जड़ कहा है—***'सतसंगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥'*** (बालकाण्ड ३।८) इसके पूर्व ही गोस्वामीजीने सत्संगके परिणामकी महत्ता बतायी है—

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥

(रा०च०मा० १।३।५-६)

जिसने जहाँ-कहीं भी जिस-किसी यत्नसे बुद्धि, कीर्ति, सद्गति और ऐश्वर्य और भलाई पायी है, सो सब सत्संगका प्रभाव है। वेदोंमें और लोकमें इनकी प्राप्तिका कोई दूसरा उपाय नहीं है। गोस्वामीजी मानस (१।३।९)-में कहते हैं कि सत्संगतिसे दुष्ट भी सुधर जाते हैं, जैसे पारसके स्पर्शसे लोहा सुन्दर स्वर्ण बन जाता है।

सठ सुधरहिं सतसंगति पाई। पारस परस कुधात सुहाई॥

सुसंगके महत्त्वको रेखांकित करते हुए गोस्वामीजी कहते हैं कि मलयपर्वतके संगसे काष्ठमात्र (चन्दन) वन्दनीय हो जाता है, फिर कोई काठका विचार करता है?

प्रिय लागिहि अति सबहि मम भनिति राम जस संग।
दारु बिचारु कि करइ कोउ बंदिअ मलय प्रसंग॥

(रा०च०मा० १।१०(क))

यह सुसंगतिका प्रभाव ही है कि रेशमकी सिलाई टाटपर भी अच्छी लगती है। ***'सिअनि सुहावनि टाट पटोरे।'*** (बालकाण्ड १४।१२)

सत्संगति भगवान्‌की कृपासे प्राप्त होती है। सत्संगसे सांसारिक विषय नष्ट हो जाते हैं। भगवान् श्रीरामने सनकादिक मुनियोंसे कहा—***'बड़े भाग पाइब सतसंगा। बिनहिं प्रयास होहिं भवभंगा॥'*** (उत्तरकाण्ड ३३।८) भक्तिकी प्राप्ति भी सत्संगसे सम्भव है। भक्ति समस्त सुखोंको देनेवाली है, परंतु बिना सत्संगके भक्तिकी प्राप्ति नहीं हो सकती। भगवान् श्रीराम अयोध्यावासियोंसे कहते हैं—***'भक्ति सुतंत्र सकल सुख खानी। बिनु सतसंग न पावहिं प्रानी।'*** (उत्तरकाण्ड ४५।५) भगवान् श्रीराम नगरवासियोंसे कहते हैं कि सत्संगति ही संसृति (जन्म-मरणके चक्र)-का अन्त करती है—***'सतसंगति संसृति कर अंता।'*** (उत्तरकाण्ड ४५।६) पुण्यसमूहके बिना सन्त नहीं मिलते। बिना सन्तके सत्संग प्राप्त नहीं होता। बिना सत्संगके विवेक नहीं होता। बिना विवेकके ज्ञान नहीं मिलता और बिना ज्ञानके मुक्ति नहीं मिलती। सन्तोंका संग मोक्षदायक है। काकभुशुण्डिजी गरुड़जीसे कहते हैं कि सत्संगति इस संसारमें दुर्लभ है। संसारमें पलभरकी एक बार सत्संगति प्राप्त हो जाय तो मनुष्य-जीवन धन्य हो जाय। ***'सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकउ बारा॥'*** (उत्तरकाण्ड १२३।६)

गोस्वामीजी कहते हैं कि सत्संगके बिना भगवत्-कथाका श्रवण सम्भव नहीं, भगवत्कथा-श्रवण बिना मोह नहीं भागता और मोहका नाश हुए बिना भगवान् श्रीरामजीके चरणोंमें अचल प्रेम नहीं होता अर्थात् सत्संग भगवत्साक्षात्कारका आधार है।

बिनु सतसंग न हरिकथा तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गएँ बिनु रामपद होइ न दृढ़ अनुराग॥

(दोहावली १३२)

भगवान् शिवजी माता पार्वतीजीसे सत्संगकी महिमा बताते हुए कहते हैं कि हे पार्वती! सन्त-समागमके समान दूसरा कोई लाभ नहीं है, परंतु सत्संग हरिकृपाके बिना सम्भव नहीं, ऐसा वेद और पुराण सभी कहते हैं।

गिरिजा संत समागम सम न लाभ कछु आन।
बिनु हरि कृपा न होइ सो गावहिं बेद पुरान॥

लंकिनीने हनुमान्‌जीसे सत्संगकी महिमाकी चर्चा करते हुए कहा कि हे तात! स्वर्ग और मोक्षके सब सुखोंको तराजूके एक पलड़ेमें रखा जाय तो भी वे सब मिलकर दूसरे पलड़ेपर रखे हुए उस सुखके बराबर नहीं हो सकते, जो क्षणमात्रके लिये सत्संगसे होता है।

तात स्वर्ग अपबर्ग सुख धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग॥

(रा०च०मा० ५।४)

इस प्रकार गोस्वामीजीने श्रीरामचरितमानसमें सुसंग और कुसंगके प्रभावको अनेक सुसंगत उदाहरणोंसे परिपुष्ट किया है। सुसंग मनुष्यको ईश्वरका साक्षात्कार, परमशिवका दर्शन और मोक्षका अधिकारी बना देता है, वहीं कुसंग मनुष्यको जीवन-पथसे भ्रष्टकर निरन्तर नरककी ओर ले जाता है। इसलिये गोस्वामीजीका यह कथन मनुष्यको दिशा प्रदान करनेके साथ उसे सुसंगमें रहनेकी प्रेरणा प्रदान करता है। ***'संत संग अपबर्ग कर कामी भव कर पंथ।'*** अतः मनुष्यको सत्संगति प्राप्तकर अपने जीवनकी सार्थकता सिद्ध करनी चाहिये और गैर सज्जनोंकी संगतिमें रहकर परिवार, समाज और देशोपकारक बन अपने सत्कर्तव्योंका निर्वाह करते हुए यशका भागी बनना चाहिये।

आयुर्वेदके अनुसार स्वास्थ्यका शत्रु है क्रोध

(प्रो० श्रीअनूपकुमारजी गक्खड़)

सुश्रुतसंहिताके अनुसार जब ब्रह्माजीने सृष्टिकी रचना करनी प्रारम्भ की तो कैटभ नामक दैत्यने अभिमानवश विघ्न पैदा करना शुरू कर दिया। तब तेजःपुंज ब्रह्माजीके क्रुद्ध होनेसे उनके मुखसे क्रोध शरीर धारण करके अतिदारुणरूप होकर गिरा। इस क्रोधरूपी पुरुषने यमके समान बलवान् और विकराल गर्जन करते हुए उस दैत्यका वध कर दिया। उसके उपरान्त वह क्रोध विचित्र रूपसे बढ़ने लगा। उसको देखकर देवताओंमें विषाद उत्पन्न हुआ। विषाद उत्पन्न करनेके कारण क्रोधको विष कहते हैं। सृष्टि-रचनाके उपरान्त ब्रह्माजीने क्रोधको स्थावर एवं जंगम प्राणियोंमें स्थित कर दिया।

प्रजामिमामात्मयोनेर्ब्रह्मणः सृजतः किल।
अकरोदसुरो विघ्नं कैटभो नाम दर्पितः॥
तस्य क्रुद्धस्य वै वक्त्राद्ब्रह्मणस्तेजसो निधेः।
क्रोधो विग्रहवान् भूत्वा निपपातातिदारुणः॥
स तं ददाह गर्जन्तमन्तकाभं महाबलम्।
ततोऽसुरं घातयित्वा तत्तेजोऽवर्धताद्भुतम्॥
ततो विषादो देवानामभवत्तं निरीक्ष्य वै।
विषादजननत्वाच्च विषमित्यभिधीयते॥
ततः सृष्ट्वा प्रजाः शेषं तदा तं क्रोधमीश्वरः।
विन्यस्तवान् स भूतेषु स्थावरेषु चरेषु च॥

(सुश्रुतसंहिता, कल्पस्थान ३। १८—२२)

क्रोधकी उत्पत्तिका कारण

सुश्रुतसंहिताके टीकाकार डल्हणने क्रोधका अर्थ पराभिद्रोहके लक्षणके रूपमें लिया है—

'क्रोधः पराभिद्रोहलक्षणः' (सुश्रुतसंहिता, सूत्रस्थान १। २५ डल्हण)

चरकसंहिताके अनुसार ईर्ष्या, शोक, भय, क्रोध, मान, द्वेष वातादिदोषजन्य नहीं हैं, अपितु ये मनके विकार हैं। ये सभी बुद्धिके दोषसे उत्पन्न होते हैं।

ईर्ष्याशोकभयक्रोधमानद्वेषादयश्च ये।
मनोविकारास्तेऽप्युक्ताः सर्वे प्रज्ञापराधजाः॥

(चरकसंहिता, सूत्र० ७। ५२)

चरकने क्रोधको विकृत पित्तका कर्म कहा है। (चरकसंहिता, सूत्र० १२। ११)

क्रोधके अतिरिक्त भय, शोक, क्रोध, लोभ, मोह, मान, ईर्ष्या, मिथ्यादर्शन आदि भी मनके मिथ्या योगके लक्षण हैं।

भयशोकक्रोधलोभमोहमानेर्ष्यामिथ्यादर्शनादिर्मानसोमिथ्यायोगः॥ (चरकसंहिता, सूत्र० ११। ३९)

मानस रोग क्रोध, शोक, भय, हर्ष, विषाद, ईर्ष्या आदिसे उत्पन्न होते हैं।

मानसास्तु क्रोधशोकभयहर्षविषादेर्ष्याभ्यसूयादैन्यमात्सर्यकामलोभप्रभृतय इच्छाद्वेषभेदैर्भवन्ति॥

(सुश्रुतसंहिता, सूत्र० १। २५)

क्रोधसे होनेवाले रोग

आयुर्वेदके ग्रन्थोंमें क्रोधको विभिन्न रोगोंके कारणके रूपमें वर्णित किया गया है—

(१) रक्तपित्त—रक्तपित्तकी उत्पत्तिमें क्रोध, शोक, भय, आयास कारण हैं।

क्रोधशोकभयायासविरुद्धान्नातपानलान्।
कट्वम्ललवणक्षारतीक्ष्णोष्णातिविदाहिनः॥
नित्यमभ्यसतो दुष्टो रसः पित्तं प्रकोपयेत्।
विदग्धं स्वगुणैः पित्तं विदहत्याशु शोणितम्॥
ततः प्रवर्तते रक्तमूर्ध्वं चाधो द्विधापि वा।

(सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र ४५। ३—५)

अर्थात् क्रोध, शोक, भय, परिश्रम, विरुद्ध भोजन, धूप, अग्नि, कटु, अम्ल, लवण, क्षार, तीक्ष्ण, उष्ण, अतिविदाहि द्रव्योंको नित्यप्रति सेवन करनेसे दूषित हुआ रस पित्तको प्रकुपित करता है। फिर विदग्ध हुआ पित्त अपने तीक्ष्ण, उष्ण आदि गुणोंसे रक्तको शीघ्र ही विदग्ध बना देता है। इससे रक्त ऊपर (मुख-नासा आदि) तथा नीचेके मार्ग (गुदा-मूत्रमार्ग)-से अथवा दोनों मार्गोंसे प्रवृत्त होता है।

(२) शिरोरोग—अतिक्रोध शिरोरोगकी उत्पत्तिका कारण है।

सन्धारणाजीर्णरजोऽतिभाष्य-
क्रोधर्तुवैषम्यशिरोभितापैः ।
प्रजागरातिस्वप्नाम्बुशीतै-
रवश्यया मैथुनबाष्पधूमैः॥
संस्त्यानदोषे शिरसि प्रवृद्धो
वायुः प्रतिश्यायमुदीरयेत्तु।

(चरकसंहिता, चिकित्सास्थान २६।१०४-१०५)

अर्थात् वेगोंको रोकनेसे, अजीर्णसे, रज (धूलि)-के सेवनसे, अधिक बोलनेसे, अधिक क्रोध करनेसे, ऋतुओंके विषम होनेसे, शिरमें वेदना होनेसे, रात्रिमें अधिक जगनेसे, दिनमें अधिक सोनेसे, शीतल जल पीनेसे, ओस लगनेसे, अधिक मैथुन करनेसे अधिक रोनेसे, अधिक धुआँ लगनेसे, जब सिरमें कफ आदि दोष अधिक एकत्र हो जाते हैं, तो इन उपर्युक्त कारणोंसे शिर:प्रदेशमें वायु बढ़ जाती है और शिरोवेदनाकारक प्रतिश्याय रोग उत्पन्न होता है।

(३) अपस्मार—अपस्मारके विभिन्न कारणोंमें से एक कारण क्रोध भी है।

चिन्ताकामभयक्रोधशोकोद्वेगादिभिस्तथा।
मनस्यभिहते नृणामपस्मारः प्रवर्तते॥

(चरकसंहिता, चिकित्सा० १०।५)

अर्थात् चिन्ता, काम, भय, क्रोध, शोक और उद्वेग आदिके कारण मन दोषोंसे विशेषरूपसे दूषित हो जाता है, तो अपस्मार रोगकी उत्पत्ति होती है।

तथा कामभयोद्वेगक्रोधशोकादिभिर्भृशम्।
चेतस्यभिहते पुंसामपस्मारोऽभिजायते॥

(सुश्रुतसंहिता, उत्तरतन्त्र ६१।६)

अर्थात् काम, शोक, भय, उद्वेग, क्रोध आदिसे मनपर बहुत आघात होनेपर पुरुषोंमें अपस्मार उत्पन्न होता है।

(४) पैत्तिक मदात्यय—पैत्तिक मदात्ययकी उत्पत्तिमें भी क्रोध एक कारण होता है।

तीक्ष्णोष्णं मद्यमम्लं च योऽतिमात्रं निषेवत।
अम्लोष्णातीक्ष्णभोजी च क्रोधनोऽग्न्यातपप्रियः॥
तस्योपजायते पित्ताद्विशेषेण मदात्ययः।

(चरकसंहिता, चिकित्साप्रकरण २४।९२)

अर्थात् जो व्यक्ति अम्लरस, उष्ण एवं तीक्ष्ण आहार-द्रव्योंका सेवन करता है, क्रोधी है, अग्नि और धूपका अधिक सेवन करता है तो उसे विशेषकर पित्तदोषजन्य मदात्यय रोग उत्पन्न होता है। ऐसे व्यक्तियोंमें प्यास, दाह, ज्वर, पसीना अधिक आना, मूर्च्छा, अतिसार, सिरमें चक्कर आना आदि लक्षण होते हैं।

(५) वातरक्त—वातरक्तके कारणोंमें क्रोधका भी उल्लेख है।

विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नप्रजागरैः ।
प्रायशः सुकुमाराणां मिष्टान्नसुखभोजिनाम्॥
अचङ्क्रमणशीलानां कुप्यते वातशोणितम्।

(चरकसंहिता, चिकित्साप्रकरण २९।७)

अर्थात् विरुद्ध भोजन (जैसे मूली और दूधका सेवन, सममात्रामें घी और मधुका सेवन इत्यादि), अधिक भोजन, क्रोध, दिनमें शयन, रात्रि-जागरण—इन सब कारणोंसे प्राय: जो सुकुमार व्यक्ति है तथा जो मधुर आहारके सुखका अनुभव करनेवाले हैं और वे व्यायाम या घूमने-फिरनेसे दूर रहते हैं तो ऐसे व्यक्तियोंमें प्राय: वात और रक्त एक साथ कुपित हो जाते हैं।

(६) अरोचक—अरोचक या भोजनके प्रति अरुचिके कारणोंमें क्रोधको भी एक कारण माना जाता है।

वातादिभिः शोकभयातिलोभ-
क्रोधैर्मनोघ्नाशनगन्धरूपैः ।
अरोचकाः स्युः परिहृष्टदन्तः
कषायवक्त्रश्च मतोऽनिलेन॥

(चरकसंहिता, चिकित्सा० २६।१२४)

अर्थात् प्रकुपित वात, पित्त, कफ—इन दोषोंसे तथा शोक, भय, अधिक लोभ, क्रोध तथा मनका विनाश करनेवाले भोजन, गन्ध और रूपको देखनेसे अरोचक रोगकी उत्पत्ति होती है।

इस प्रकार आयुर्वेदके अनुसार क्रोध विभिन्न प्रकारके रोगोंका जन्मदाता है। अत: कल्याणकामी मनुष्यको क्रोधसे बचना चाहिये।

तीर्थ-दर्शन—

केरलस्थित जटायुतीर्थ—जटायुमंगलम्

(प्रो० श्रीलम्बोधरनजी पिल्लै बी०)

हिन्दुओंके धर्मग्रन्थ वाल्मीकिविरचित रामायण और व्यासविरचित महाभारतमें वर्णित जटायु नामक पक्षीके बारेमें आजके नवयुवकोंमेंसे अधिकांशको पूरी जानकारी नहीं होती है। पक्षीयोनिमें जन्म लेकर हमारी सभ्यता, संस्कृति और इतिहासमें स्थान पानेवाले जटायुसे सम्बन्धित एक प्रसिद्ध स्थान और चिर स्मारकके रूपमें एक मन्दिर दक्षिण भारतके केरल राज्यमें स्थित है।

जटायु एक पुराणप्रसिद्ध पक्षी है। भगवान् विष्णुसे शुरू होकर ब्रह्मा, मरीचि, कश्यप एवं अरुणसे होकर वंशावली जटायुतक पहुँचती है।

महाभारत आदिपर्व, अध्याय ६६ से यह पता मिलता है कि अरुणको श्येनी नामक पक्षिणीसे सम्पाति और जटायु नामक दो पुत्र जन्मे थे। यह जानकारी वाल्मीकिरामायण, अरण्यकाण्ड, सर्ग १४ में भी पायी जाती है। तमिल भाषाके कम्ब नामक कविकृत 'कम्बरामायण' में अरुणकी पत्नीका नाम 'महाश्वेता' बताया गया है। विद्वानोंके मतमें महाश्वेता श्येनीका ही दूसरा नाम है।

जटायुके बारेमें वाल्मीकीय रामायण किष्किन्धाकाण्डके ५८वें अध्यायमें इस प्रकार एक कहानी मिलती है कि एक बार सम्पाति और जटायु सूर्यभगवान्‌को लक्ष्यकर उड़ गये। मध्याह्नमें जटायु सम्पातिको पराजितकर सूर्यमण्डलमें प्रवेश कर गया। अपने भाईको बचानेके लिये सम्पातिने पंख फैला दिये। उससे जटायु तो बच गया, किंतु सूर्यका ताप पड़नेसे पंख जल जानेसे सम्पाति धरतीपर गिर पड़ा। थका हुआ सम्पाति विन्ध्यपर्वतके ऊपर गिर पड़ा तो वहाँ तपस्या कर रहे निशाकर (चन्द्रमा नामक मुनि)-ने उसे देखा। सहानुभूतिजन्य करुणासे उन्होंने उसे बचा लिया। इसके बाद कभी भी सम्पाति एवं जटायु मिल न सके।

सम्पातिसे अलग हुआ जटायु दक्षिण भारतमें आया। दक्षिण केरलमें कोल्लम नामक जिलेके कोट्टारक्करा तहसीलमें 'चटयमंगलम्' नामक एक प्रसिद्ध पुण्य स्थान है। इतिहाससे व्यक्त होता है कि इस स्थानका पुराना नाम 'जटायुमंगलम्' था। मलयालम भाषामें 'जटायुमंगलम्' का अर्थ है 'जटायुकी जगह'। केरलके प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० इलमकुलम कुंजन पिल्लैके मतमें यह स्थान राम-रावण-युद्धसे सम्बन्धित है।

भगवान् श्रीराम पत्नी सीता एवं भाई लक्ष्मणके साथ जब वन्य-जीवन व्यतीत कर रहे थे, तो उस समय, लंकाका राक्षस राजा रावण वेश बदलकर आकर सीताका अपहरण कर ले गया। राक्षसराजने सीतादेवीको अपने फूलोंसे बनाये गये विमानपर चढ़ाकर लंकाकी ओर आकाशमार्गसे यात्रा शुरू की। यह यात्रा केरलके कोल्लम जिलेके आजके 'चटयमंगलम्' के ऊपरसे हो रही थी। रावणद्वारा सीताका अपहरण समझकर जटायुने 'जटायुमंगलम्' (चटयमंगलम्)-के ऊपर आकाशमें जाकर रावणके विमानको रोक लिया। रावणने क्रुद्ध होकर अपने चन्द्रहास नामक तलवारसे जटायुपर प्रहार किया। पंख टूटकर घायल होकर जटायु नीचे गिर पड़े। वाल्मीकि रामायण, अरण्यकाण्ड, ५१वें अध्यायमें यह बात वर्णित है।

रावणके अधीन पहुँच गयी देवी सीताकी तलाशमें राम और लक्ष्मण चारों ओर घूमते फिरे। उसी खोजके क्रममें वे जटायुके पास आ पहुँचे, जो भयानक रूपसे घायल था। उस समय मरणासन्न जटायु रामनाम जप रहे थे। जटायुने रामको रावणद्वारा सीताके अपहरणकी खबर दी। उसने अपने ऊपर पड़ी हुई राक्षसराजकी क्रूरताका चित्रण भी श्रीरामके सम्मुख पेश किया। जिस बातको अपने स्वामीको समझाना था, उस बातको व्यक्त करनेके पश्चात् रामभक्त, आत्मत्यागी, परोपकारी जटायुने इस सांसारिक जीवनका विच्छेद कर लिया। राम एवं लक्ष्मणको बड़ा दुःख हुआ। रामने अपने भक्त जटायुको अपनी श्रद्धांजलि अर्पित की। फिर उसका भौतिक शरीर प्रकृतिको समर्पित किया। तमिलके कम्बरामायणमें बताया गया है कि रामके शेष क्रियाद्वारा जटायुको मोक्ष मिला। 'चटयमंगलम्' (जटायुमंगलम्)-का इतिहास इस इतिहाससे जोड़कर पढ़ना अच्छा है।

'चटयमंगलम्' केरलकी राजधानी 'तिरुवनन्तपुरम्' के निकटका एक स्थान है। कोट्टारक्करा नामक तहसीलका यह सुरम्य स्थान, कोट्टारक्करासे 'तिरुवनन्तपुरम्' की ओर जानेवाली मुख्य सड़कके किनारेपर स्थित है। यह एक छोटा-सा गाँव है। यह गाँव रामभक्त जटायुके कारण प्रसिद्ध हुआ है। रावणके प्रहारसे पक्षिराज जटायु जिस स्थानपर गिर पड़े, उस स्थानका नाम 'जटायुमंगलम्' पड़ गया। जटायुका रावणको रोकनेका उद्देश्य उसे मारना नहीं था; बल्कि सीतादेवीकी रक्षा करना था, किंतु रावण जटायुको मारकर 'जटायुमंगलम्' के ऊपरसे तमिलनाडु होते हुए लंका पहुँच गया। रावणसे घायल होकर जटायु जिस विशाल चट्टानपर गिर पड़ा, उस चट्टान और आसपासका नाम है 'जटायुमंगलम्'। आधुनिक परिष्करणकालमें 'जटायुमंगलम्' 'चटयमंगलम्' बन गया।

चट्टानपर पड़ा हुआ जटायु, रामभक्त होनेके कारण रामनाम जपकर अपने स्वामीके आगमनकी प्रतीक्षा करता रहा। खून बह रहा था, शरीर थका था और उसे बड़ी प्यास भी लगी थी। वह अपनी चोंचसे चट्टानके ऊपर काटने लगा। फलस्वरूप चट्टानपर एक तालाब प्रकट हुआ। यहाँके कुछ लोगोंके मतमें यह तालाब उसके पंख फड़फड़ानेके कारण बना। इस तालाबमें हर समय पानी रहता है। इस विशाल चट्टानपर भगवान् श्रीरामचन्द्रके चरणोंकी छाप भी पड़ी हुई है। रामने जटायुके पास आकर, उन्हें सान्त्वना देकर अपनी कृतज्ञता प्रकट की। थोड़ी देर बाद जटायु मर गये। रामने उस भक्तका अन्त्येष्टि-संस्कार किया। इस सन्दर्भमें चट्टानके ऊपर पड़े हुए रामके चरण-चिह्नको यहाँ आनेवाला भक्त पूजनीय मानता है।

यहाँके पुराने पीढ़ीके कुछ लोगोंका मत है कि वन-यात्राके बीच श्रीराम सीता और लक्ष्मणके साथ यहाँ पर्णकुटी बनाकर रहे थे। इस चट्टानके निचले भागमें सीतादेवीने रसोई बनायी थी। सीताके रसोईघरके रूपमें यहाँ चार दीवारोंके समान चट्टानसे घिरा एक कमरा-जैसा स्थान है। तीन चट्टानके ऊपर छतरीके समान एक लम्बी चट्टान पड़ी है। इस स्थानको सीताका रसोईघर कहते हैं। इस रसोईके भीतर छोटे-छोटे पत्थरके कुछ साधन-सामग्रियाँ भी हैं। लोगोंके विश्वासमें ये सब रसोई-उपकरण हैं। करीब ३० वर्ष पहलेतक इस चट्टानके ऊपर सरकार और अन्य संस्थाओंकी ओरसे कोई परिष्करण-परिमार्जन नहीं हुआ था। तब यह प्रदेश मनोरम प्राकृतिक शोभा, इतिहास

और संस्कृतिके स्तम्भके रूपमें रहा, किंतु बादमें सरकार और अधिकारियोंने इस पुराणप्रसिद्ध स्थानको धनार्जनका स्रोत समझकर तीर्थयात्राका केन्द्र बना दिया। आज स्वदेशसे ही नहीं, विदेशसे भी लोग यहाँ आने लगे हैं।

'चटयमंगलम्' की जटायु चट्टान साठ एकड़में फैली हुई एक विशाल चट्टान है। इस चट्टानके नीचेसे बहनेवाली छोटी-छोटी नदियाँ तीर्थयात्रियोंको आनन्द प्रदान करती हैं। भक्तवत्सल श्रीरामकी मूर्तियाँ भी हैं। जटायुकी मूर्ति ६० फुट लम्बी और १५० फुट ऊँची है। जटायुका इस प्रकारका स्मारक-मन्दिर पूरे संसारमें दूसरा नहीं है।

'चटयमंगलम्' की जटायु चट्टान समुद्रस्तरसे १००० फीटकी ऊँचाईपर है। इसके चारों ओर नारियलके बगीचे हैं और रबड़ एवं चावलकी खेती होती है। नीचेकी मुख्य सड़कसे चट्टानके शीर्षकी ओर जानेके लिये दो रास्ते हैं। इनमें एक आसान है, तो दूसरेपर आना-जाना मुश्किल है। इसलिये दूसरा रास्ता साहसिक यात्रियोंके लिये आनन्ददायक लगता है। चट्टानके नीचे मुख्य सड़कपर एक पुराना शिव-मन्दिर है। इसके एक कोनेपर राष्ट्रपिता महात्मा गांधीका एक स्मारक स्तूप भी खड़ा है। जटायु चट्टानके दूसरे भागमें भगवान् अय्यप्पनका एक मन्दिर है। इसे यहाँके निवासी '**कुट्टी अय्यप्पन क्षेत्रम्**' (छोटा अय्यप्पा मन्दिर) कहते हैं।

'चटयमंगलम्' के आसपास हिन्दुओंके अनेक ऐतिहासिक एवं पुराणप्रसिद्ध स्थान और भी हैं; जिनमें एक है, यहाँसे करीब १० मील दूरपर स्थित कोट्टुक्कल कलत्रिक्कोविल गणपति मन्दिर। यह देवमन्दिर देशवासियोंके समान विदेशियोंको भी आकर्षित करता है। यहाँका मन्दिर चट्टानके भीतर है, एक साधारण चट्टानके भीतर एक कमरा है, जिसपर शिवलिंगका पूजन होता है। कमरेके दूसरे भागमें गणपति एवं पार्वतीदेवीकी पूजा होती है। 'कलत्रिक्कोविल' (चट्टान-मन्दिर) एक गुफा-मन्दिर माना जाता है। इसे आदिमकालीन, गुफावासी मनुष्यनिर्मित माना जाता था। इसलिये समय-समयपर केरल सरकार और भारत सरकारका पुरातत्त्व विभाग परीक्षण-निरीक्षण करता रहता है। चट्टान-मन्दिर (कलत्रिक्कोविल)-के समान पूरे संसारमें दो-तीन मन्दिर ही होंगे।

तिरुवनन्तपुरम् केरलकी राजधानी है। यहाँसे 'चटयमंगलम्' ५० मीलकी दूरीपर है। तिरुवनन्तपुरम् (त्रिवेन्द्रम)-का श्रीपद्मनाभ (महाविष्णु)-मन्दिर एक पुण्यमय, प्राचीन और विख्यात मन्दिर है। यह मन्दिर तिरुविताँकूर राजवंशके अधीन था। यह राजवंश पूर्णरूपेण महाविष्णुभक्त था। इस वंशके राजाओंका यह प्रमुख आराधना-केन्द्र था। इस राजवंशके राजाओंको 'पद्मनाभदास' कहते हैं। वे अपनी सम्पत्तिका एक बड़ा हिस्सा अपने स्वामी पद्मनाभ (महाविष्णु)-को समर्पित किया करते थे। इस मन्दिरके चारों ओर मिट्टीके नीचे गुफाएँ हैं, मलयालम भाषामें इन्हें 'निलवरा' कहते हैं, जिनमें करोड़ों रुपयेके सोना, चाँदी और हीरे-जैसे अमूल्य रत्न भरे पड़े हैं। तिरुवनन्तपुरम्का पद्मनाभ मन्दिर संसारके सबसे अधिक सम्पत्तिसम्पन्न मन्दिरोंमेंसे एक है। यहाँ भगवान् महाविष्णुकी आदिशेष (अनन्त) नामक नागके ऊपर शयनकी मुद्रामें लेटी हुई एक बड़ी मूर्ति है। इस मन्दिरमें दर्शनकर पुण्यप्राप्तिके लिये प्रतिदिन हजारों लोग यहाँ आते हैं।

कोट्टारक्करा '**महागणपतिक्षेत्रम्**' (गणपति-मन्दिर) 'चटयमंगलम्' के निकटका एक और प्रमुख पुण्य स्थान है। यहाँ गणपतिभगवान्के साथ-साथ उनके पिता शिव और माता श्रीपार्वतीजीकी भी पूजा होती है। यहाँसे संसार-प्रसिद्ध 'शबरीमला' मन्दिरके लिये रास्ता शुरू होता है। दक्षिण भारतीयोंकी प्रधान आराधनामूर्ति 'अय्यप्पन' का जन्मस्थान यहाँ है। वैसे उन्हें जहाँ पाला गया, वह 'पन्तलम राजमहल' भी निकट ही है।

यहाँके लोगोंका विश्वास यह है कि रामभक्त जटायुके मन्दिरपर आकर दर्शन करना एवं रामनाम जपना, भक्तप्रिय भगवान् श्रीरामका अनुग्रह पानेका एक रास्ता है। 'चटयमंगलम्' (जटायुमंगलम्) दक्षिण भारतीयोंको उत्तर भारतीयोंसे मिलानेका तीर्थ है। यह तीर्थ सहृदय भक्तको जटायुके अनुपम बलिदानसे, दक्षिणकी सभ्यताको संस्कृतिसे और सबसे ऊपर विश्वके पूरे रामभक्तोंको अपने परमादरणीय स्वामीसे मिलाते हैं।

धर्मरथ

(श्रीभगवतदास राघवदासजी महाराज)

'धर्मः प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो' (श्रीमद्भागवत-महापुराण १ । १ । २) अर्थात् श्रीमद्भागवत-महापुराणमें वर्णित जो भी विषय-वस्तु है, वह धर्म ही है, किंतु कौन-सा धर्म? तो श्रीवेदव्यासजी महाराज कहते हैं कपटरहित धर्म; तो क्या धर्म भी कपटयुक्त होता है?

श्रीरामचरितमानसमें पूज्यपाद गोस्वामी श्रीतुलसीदासजीने भगवान् श्रीरामजी तथा उनके सखा श्रीविभीषणजीके मध्य हुए संवादद्वारा धर्मके तात्त्विक स्वरूपका धर्मरथसम्बन्धी प्रसंगके माध्यमसे वर्णन किया है। जब श्रीरामजीसे श्रीविभीषणजीने कहा—'प्रभो! आप इस दुर्दान्त राक्षसराज रावणसे कैसे जीत सकते हैं? कारण कि आपके पास रथ तो है ही नहीं, कवच और पदत्राण भी नहीं हैं, फिर जीतकी आशा कैसे की जाय?' ऐसा कहते हुए विभीषणजी व्याकुल हो गये; क्योंकि उन्हें तो रावणकी शक्तियोंका पूरा परिचय था। मानसमें वर्णन आया है—

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषन भयउ अधीरा॥
नाथ न रथ नहिं तन पद त्राना। केहि बिधि जितब बीर बलवाना॥

(रा०च०मा० ६। ८०। १, ३)

जब इस प्रकार विस्मयपूर्वक विभीषणजीने जिज्ञासा की, तो आनन्दकन्द कौसलेन्द्र भगवान् श्रीरामजी महाराज अपनी परम करुणायुक्त वाणीमें कहना प्रारम्भ करते हैं। ठाकुरजी यहाँ धर्मरथके माध्यमसे धर्मके यथार्थ स्वरूपका ही पूरा विस्तार कर देते हैं।

जिस प्रकार रथमें रथके सभी अवयव—घोड़ा, लगाम, सारथी आदि रथ चलने एवं चलानेके लिये आवश्यक हैं, उसी प्रकार जीवनमें सुख-शान्ति एवं शत्रुपर विजय प्राप्त करनेके लिये धर्ममय मार्गकी अति आवश्यकता है। ठाकुरजी सर्वप्रथम रथके पहियोंके बारेमें बतलाते हैं। शौर्य, धैर्य, सत्य और शील क्रमशः रथके पहिये, ध्वजा एवं पताका हैं। पुनः घोड़ोंका वर्णन करते हुए कहते हैं। बल, विवेक, दम और परहित—ये चार घोड़े हैं। बल हो, लेकिन बल विवेकयुक्त हो; तो एक तो बल, दूसरा विवेक, तीसरा दम यानी इन्द्रियनिग्रह तथा चौथा परहित, अब ये चारों घोड़े लगामसे लगे हुए हैं, इनकी रस्सियोंका वर्णन करते हैं—

बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे॥

(रा०च०मा० ६। ८०। ६)

रस्सियाँ हैं—क्षमा, कृपा तथा समता। अब यहाँ ध्यान देनेयोग्य जो मुख्य बात है—वह है, घोड़े तो हैं चार, परंतु लगामें हैं तीन।

बलकी रस्सी है क्षमा, विवेककी रस्सी है कृपा तथा दमकी रस्सी है समता। परहितरूपी घोड़ेकी रस्सी नहीं है।

इसका कारण यह है कि यदि बल है तो उसका दुरुपयोग हो सकता है, विवेक है तो उसका भी कहीं-न-कहीं अनावश्यक कार्य हो सकता है, दम है तो उसका भी अन्तःभाव हृदयरूपी गुहामें अहंकारके रूपमें जाग्रत् हो सकता है, जो कि पतनका ही एक कारण बन सकता है। लेकिन परहित एक ऐसा साधन है, जो अपने-आपमें पूर्ण भगवत्प्राप्तिमें सहायक है, इसकी कभी भी इति नहीं हो सकती, न ही इसका कहीं भी कभी भी दुरुपयोग हो सकता है; मात्र यह एक नित्य-निरन्तर सत्पथपर चलनेकी ही प्रक्रिया है, जो कभी रुके नहीं, इसे बन्द करने, रोकनेकी कोई आवश्यकता नहीं है।

अतः इसी कारण प्रभु श्रीरामजीने इसकी रस्सी यानी लगामकी आवश्यकता नहीं रखी। उन्होंने कहा है—

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥

(रा०च०मा० ३। ३१। ९)

परहित—दूसरेका हित, मनसे भी हो जाय तो प्रभु (परमात्मा) रीझ जाते हैं। इसीलिये मानो प्रभुने इसे रोकनेके लिये और लगामकी आवश्यकता नहीं समझी।

अब आते हैं धर्मपर, तो धर्म क्या है? गोस्वामी तुलसीदासजी महाराजके अनुसार—

पर हित सरिस धर्म नहिं भाई। पर पीड़ा सम नहिं अधमाई॥

(रा०च०मा० ७। ४१। १)

धर्ममें भी कपटरहित धर्म! यहाँ एक बात और ध्यान देनेयोग्य है, यहाँपर श्रीठाकुरजीने रथके प्राय: सभी अवयव गिनाये और सबके विषयमें बताया, परंतु जो मुख्य अवयव है धुरी, जो पहियों एवं घोड़ोंका सम्बन्ध रथसे बनाये रहती है और उसीपर पूराका पूरा भार होता है तथा रथी एवं सारथी आसीन होते हैं, उस धुरीके बारेमें पूज्यपाद गोस्वामीजी प्रभुप्रेमपात्र श्रीभरतलालके माध्यमसे बतलाते हुए कहते हैं—धुरीको कौन धारण कर सकता है? धुरीको तो वास्तवमें कोई कपटरहित धर्म-मर्मज्ञ प्रभुप्रेमी ही धारण कर सकता है, जैसे श्रीभरतलालजी महाराज। यथा—

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को॥

(रा०च०मा० २। २३३। १)

धर्मकी धुरीको तो श्रीभरतलालजी-जैसे प्रभुप्रेमी भक्त ही धारण कर सकते हैं, जिन्हें राजका बिलकुल ही लोभ नहीं था। उन्हें जो राजलक्ष्मी प्राप्त हुई थी, उसके बारेमें गोस्वामी तुलसीदासजी महाराज लिखते हैं—

अवध राजु सुर राजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनदु लजाई॥
तेहिं पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा॥

(रा०च०मा० २। ३२४। ६-७)

ऐसा ऐश्वर्य, ऐसा साम्राज्य; जिसका कोई कभी भी वर्णन नहीं कर सकता और कहना नहीं होगा कि इतने वैभवशाली साम्राज्यको श्रीराम और भरतने धर्मकी रक्षाके लिये तुच्छ माना। आज हमारे जो भी धर्मरूपी कृत्य कहे जाते हैं, उन्हें यदि सूक्ष्मतासे परखा जाय तो कहीं-न-कहीं उनमें भी लोभका लेश तो मिल ही जायगा। आज जितने भी भोज, भण्डारे, कथा-आयोजन या अन्य धार्मिक कृत्य जो देखनेमें तो परहितके कार्य लगते हैं, उनमें अधिकांशत: कपटपूर्ण आचरण होता है, इसीको श्रीभागवतकारने ***'धर्म: प्रोज्झितकैतवोऽत्र परमो'*** के नामसे गाया है।

कपटरहित धर्म तब होगा, जब व्यक्तिके आचरणमें ईश्वरके प्रति भक्तिभाव, वैराग्य, सन्तोष, दानशीलता, सदसद्विवेकिनी बुद्धि, श्रेष्ठ ज्ञान, मनकी निर्मलता, यम, नियम, गुरुजनों एवं सत्पुरुषोंके प्रति पूज्य भाव आदिका समावेश होगा। धर्मरथके प्रकरणमें आगे प्रभु कहते हैं—

ईस भजनु सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा॥
अमल अचल मन त्रोन समाना। सम जम नियम सिलीमुख नाना॥
कवच अभेद बिप्र गुर पूजा। एहि सम बिजय उपाय न दूजा॥
सखा धर्ममय अस रथ जाकें। जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताकें॥

कपटरहित धर्म और कपटयुक्त धर्मके मध्य बहुत ही पतली-सी पार्थक्य रेखा होती है, इसे एक अन्य उदाहरणसे समझा जा सकता है। मानसमें एक पात्र है कालनेमि। उसे गोस्वामीजीने ***'कालनेमि कलि कपट निधानू'*** के रूपमें वर्णित किया है। जब श्रीहनुमान्‌जी महाराज लक्ष्मणजीके प्राण बचानेके लिये संजीवनी बूटी लाने जा रहे थे, तो रावणने उसे उनका मार्ग रोकनेके लिये भेजा था। उस राक्षस कालनेमिने मायासे मुनिका रूप बनाया और श्रीहनुमान्‌जीके मार्गमें राम-नामका जप करते हुए बैठ गया। हनुमान्‌जीने उसे साधु समझकर प्रणाम किया। उसने कहा—राम और रावणके मध्य महान् युद्ध चल रहा है, इसमें रामकी ही विजय होगी—इसमें कोई सन्देह नहीं है। इस प्रकार कालनेमि प्रकट रूपमें रामजीकी प्रशंसा कर रहा था, परंतु उसका छद्म उद्देश्य हनुमान्‌जीको रोककर उनका अहित करना था। इस प्रकार उसका यह कार्य कपटयुक्त धर्म है।

अन्तमें यदि वास्तवमें मानव-जीवनका परम लाभ प्राप्त करना चाहते हैं तो निश्छल मनसे मात्र प्रभुकी प्रसन्नताके लिये ही परहित, धर्म या जो भी शुभ कर्म हो, करते रहना चाहिये। करना चाहिये। इन्हीं शब्दोंके साथ लेखनीको विराम। मंगलमस्तु इति शुभम्।

संत-चरित—

गुजरातके सन्त श्रीडायाराम बाबा

(श्रीरतिभाईजी पुरोहित)

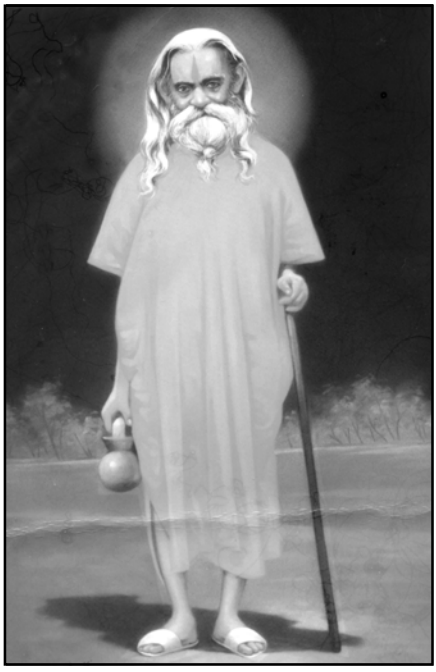

गुजरात राज्यके जूनागढ़ सोरठ जिलेके मानावदर तालुकाके बाँटवा शहरके पास कड़वा धारीदार पटेलोंकी बस्तीवाला नानड़िया नामका एक छोटा-सा गाँव है। उस गाँवमें सन्तश्री डायाराम बाबाका जन्म परम भाग्यशाली जमींदार कड़वा पाटीदार पटेल किसान श्रीराजाभाई चाड़सणीया और माता यशोदाबेनके यहाँ दिनांक २५ दिसम्बर १८८९ ई०को पौष कृष्ण पक्षकी तृतीयाके दिन हुआ था।

कहा जाता है कि माता यशोदाबेनके कन्हैया—लाला डायारामका भालप्रदेश एक सन्त-जैसा दिव्य आध्यात्मिक तेजसे भरा हुआ था। एक बार बालक डायारामके माता-पिताने जूनागढ़, रैवतक पर्वत, गिरनार और सोमनाथ महादेवजीकी दर्शन-यात्रा करने जानेवाली सन्त-मण्डलीको भण्डारा देकर दान-दक्षिणा दी। सन्तुष्ट सन्त-मण्डलीने बालक डायारामके भालप्रदेशमें दिव्य तेज देखकर आशीर्वाद देते हुए दम्पतीसे कहा—भगतजी! यह तुम्हारा बालक डाया डाया (सयाना) ही होगा और एक बड़ा सन्त या नेता बनेगा। वही छोटा बालक आगे जाकर सन्त श्रीडायाराम बाबाके नामसे प्रसिद्ध हुआ।

राजाभाई पटेलके पास जमीन तो बहुत थी, किंतु आजके जैसी वैज्ञानिक दृष्टिके अभावसे उत्पादन बहुत कम होता था। उनके दो बेटे थे। बड़ा हरिभाई और छोटा डायाराम। बाबाका बचपन सामान्य किसानके बेटे-जैसा ही बीता था। बाबा एकदम सीधे-साधे और दयाभावसे भरे स्वभावके थे। उन्होंने दो कक्षातक पढ़ाई की थी। पिता उन्हें खेतीके काममें लगाते तो थे, लेकिन सरल स्वभावके बाबा कुछ कर नहीं पाते थे।

बाबा गीताके 'वासुदेव: सर्वमिति' को माननेवाले थे। वे प्राणीमात्रको दयाभावसे देखते थे। खेतमें पशु, पक्षी, गाय, भैंस आदि फसल खा जाय तो भी वे कुछ बोलते नहीं थे। इसलिये बाबाको पिताजी और बड़े भैया बिगड़ते रहते थे।

बाबा कहते थे—हमारा कुछ भी नहीं है, सब कुछ ईश्वरका है। यह बाग-बगीचा ईश्वरका बनाया हुआ है। हम सब बगीचेको देखते हैं, बगीचेको बनानेवालेको नहीं देखते। हम सब बगीचेमें घूमने आये प्रवासीमात्र हैं।

बाबा कहते थे—हमें ईश्वरने दिया है और हम अन्यको दें। हमें भगवान्‌की सृष्टि—प्रकृतिको मानना चाहिये। इससे हमारा कल्याण होगा, कुछ बिगड़नेवाला नहीं है—**'न हि कल्याणकृत् कश्चिद् दुर्गतिं तात गच्छति।'**

बाबा कहते थे—जरूरी साधन-सामग्री ही रखो, अधिक साधन-सामग्री सबको बाँट दो। ईश्वरपर भरोसा रखो। ईश्वर सबका भरण-पोषण करेंगे। हमें ईश्वर देंगे और हमारा रक्षण भी करेंगे—**'योगक्षेमं वहाम्यहम्'**।

इस उपदेशका अनुभव इस लेखके लेखकने स्वयं किया है। बाबा कम साधन-सामग्रीमें भी 'श्रीमद्‌भागवत-कथा'का सफल आयोजन करते थे। बाबा वचनसिद्ध सन्त-महात्मा थे और श्रीमद्‌भागवत-कथामें बहुत प्रीति रखते थे।

बाबाकी शादी अपने ही गाँवके पटेल लक्ष्मण भाई गरालाकी बेटी कंकुबेनके साथ हुई थी। उनके दो बेटे हुए। भीमजी भाई और राघवजी भाई। एकबार अकाल पड़ा। बड़े भैया हरिभाईने बाबाको फसलकी सिंचाई करनेके लिये खेतपर भेजा। बाबा खेतके कुएँपर गये। खेतमें एक दिव्य चेतनावाले गिरनारी सन्त आये। बाबाने सन्तको खिलाया-पिलाया और सेवा की। गिरनारी सन्तने

प्रसन्न होकर कहा—'डाया! फसलकी सिंचाई मत कर, मेहनत व्यर्थ जायगी, भजन कर। थोड़े ही दिनोंमें वर्षा होगी।' ऐसा कहकर सन्त चले गये।

बाबाके बड़े भैया हरिभाई आये, बिगड़े—अरे! कामचोर! तूने फसल चौपट कर दी। काम न करना हो तो यहाँसे चला जा। गिरनार जा और भक्ति कर।

बाबाके मनमें चोट लगी। मनमें भक्तिका रंग चढ़ गया। उपदेश-आदेश दोनों मिल गये। बाबाने बारिशके लिये कुछ खाये-पीये बिना लगातार प्रभु-प्रार्थना शुरू कर दी। पाँच दिनमें बारिश हुई और चारों ओर जल-ही-जल हो गया। पानीके लिये तड़पते किसान डायाको सन्त डायाराम बाबाके नामसे जानने लगे। कुछ लोग कहते हैं कि वे गिरनारी सन्त नहीं थे, वरन् यह बाबाका स्वयं शिव-दर्शन था।

बाबाने गाँव-परिवार छोड़ दिया। रैवतक पर्वत गिरनार (भवनाथ जूनागढ़)-की गुहामें जा बैठे। वहाँसे मानावदर शहरके पास भितड़ी गाँवके कालेश्वर महादेव मन्दिरमें धूना (अग्निकुण्ड) बनाया। वहाँसे बाबाने अपने गाँवके पास टींबड़ी गाँवकी धार (निर्जन रास्ते)-में आसन और धूना बनाया।

उधर अपने गाँवसे सन्तस्वरूप बाबा डायाके चले जानेसे भागदौड़ मच गयी। बड़े भैया हरिभाई बाबाके निज परिवारकी स्मृति दिलाकर मनाने आये। बाबा नहीं गये।

गाँवके सब किसान लोग जबरन बाबाको अपने गाँव ले आये। बाबाको शिव मन्दिरमें जप-तप करनेको कहा। गाँवके लोग बाबाको रातमें शिवमन्दिरमें बन्द कर देते थे, लेकिन सुबहमें ताला बन्द, बाबा बाहर! सबलोग बाबाको यत्र-तत्र-सर्वत्र देखा करते थे। कहा जाता है कि बाबाकी परीक्षा लेने मानावदर स्टेटके नवाबकी बेगम साहिबाने भी बाबाको मन्दिरमें ताला लगाकर बन्द किया था, लेकिन ताला बन्द रहा और बाबा बाहर थे।

बाबाने अपने घर-परिवारको वचन दिया था कि बिना देखे, खोले कोठी (अन्न भरनेका एक बड़ा बर्तन)-के नीचेसे अन्न लेते रहो, खाते रहो, खतम नहीं होगा।

अब बाबाने अपने गाँवके मान-सम्मानके साथ 'साधु तो चलता भला'की रीतिसे, सब भक्तों-सेवकोंको सत्संग-भजनका लाभ देनेके लिये तप-यात्रा शुरू की।

बाबा गात्राल-चांदीगढ़ गाँव होकर केवद्रा गाँव आये। यहाँके भीड़भंजन महादेवमें बारह (१२)वर्षतक धूना जमाया। यहाँसे बाबाने अन्न, भोजन बन्दकर केवल लिंबड़ेका कड़वा रस ही पीना शुरू किया, जो अन्ततक रहा। उन्होंने नाम-जप बढ़ानेके लिये मौनव्रत भी धारण किया।

बाबा अगल-बगलके गाँवके अपने भक्तों—सेवकोंके घर रातको जाकर-जगाकर दर्शन-सत्संगका लाभ देते थे। लोग बाबाके शरीरपर नागराज सर्पको चढ़ा हुआ देखते थे। बाबा अपने सभी भक्तों—सेवकोंको अभयदृष्टि और हस्त-स्पर्शसे आशीर्वाद देते थे, उसी प्रकार नागराज सर्पको भी अभयदृष्टिकर हस्तस्पर्शसे छूते थे और हटा देते थे। बाबाके आश्रममें नागराज सर्प बिना रोके-टोके घूमते-फिरते थे। किसीको भी भय न था। आज भी बाबाके आश्रममें सर्प इधर-उधर घूमा करते हैं और भक्त-सेवक लोग बाबाजीका ही दर्शन मानकर वन्दन करते हैं।

बाबा श्रीमद्भागवतकथा, तुलसी-विवाह बार-बार करते रहते थे। कभी-कभार रामलीलाका मंचन भी किया करते थे। कहा जाता है कि एकबार तुलसी-विवाहके समय दो अज्ञात स्वरूपवान् युवा साधु आये। बाबाने दोनों साधुओंको आभूषणादिसे अलंकृतकर विवाहकी शोभायात्रामें बिठाया। शोभायात्राके बाद दोनों साधु अचानक अदृश्य हो गये। बादमें सब लोगोंको लगा कि ये साधु स्वयं भगवान् नर-नारायण थे।

बाबाने सोंदरड़ा (केशाद) गाँवके रोडपर अपना आश्रम बनाकर यहीं आसन और धूना जमाया। ब्रह्मलीन होनेके समयतक यहीं रहे। यहाँ श्रीमद्भागवत, तुलसी-विवाह, रामलीला आदि धार्मिक प्रसंग करते रहे।

बाबा 'जपात् सिद्धिः'में विश्वास रखते थे। उनके निवास-स्थानकी कुटीमेंसे दिन-रात, सुबह-शाम सतत रामनामकी ध्वनि सुनायी देती थी।

बाबा जहाँ भी गये थे, वहाँ आज भी उनका आसन-धूना विद्यमान है। उन्होंने अपने सोंदरड़ा-स्थित आश्रममें सम्वत् १९५३ भाद्रमास कृष्णपक्ष द्वितीया दिनांक २९ सितम्बर १९५८, सोमवारको अपना पांचभौतिक शरीर ब्रह्मलीन किया।

सुखभोगकी इच्छाओंके नाशका उपाय

(ब्रह्मलीन श्रद्धेय स्वामी श्रीशरणानन्दजी महाराज)

पहले चित्त-शुद्धिके लिये सुख-भोगकी इच्छाओंके त्यागकी बात कही गयी थी। अब विचार यह करना है कि सुख-भोगकी इच्छा उत्पन्न कैसे होती है और इसका त्याग कैसे हो सकता है? विचार करनेपर पता लगता है कि इसके त्यागके दो उपाय हैं—एक विचार और दूसरा प्रेम, क्योंकि अविचारके कारण शरीरमें अहंभाव हो जानेसे और उससे सम्बन्ध रखनेवाले पदार्थोंमें मेरापन हो जानेके कारण ही भोगेच्छाओंकी उत्पत्ति होती है।

यह हरेक मनुष्यके अनुभवकी बात है कि जब उसका किसीके प्रति क्षणिक प्रेम भी होता है, तब उस समय वह अनायास प्रसन्नतापूर्वक अपने प्रेमास्पदको सुख देनेकी भावनासे अपने सुखका त्याग कर देता है। उस समय उपभोगकी स्मृति लुप्त हो जाती है और उसे अपने प्रेमास्पदको सुख देनेमें ही रस मिलता है। उस रसके सामने उपभोगका रस फीका पड़ जाता है। जब साधारण प्रेमकी यह बात है, तब जो प्रेमके तत्त्वको जाननेवाले हैं, हरेक प्राणीके साथ सदा ही प्रेम करते हैं, प्रेम ही जिनका स्वभाव है, ऐसे परम प्रेमास्पद प्रभुके प्रेमकी जिसको लालसा है, उस प्रेमीकी सब प्रकारके सुखभोग-सम्बन्धी इच्छाओंका त्याग अपने-आप बिना प्रयत्नके हो जाय, इसमें आश्चर्य ही क्या है! इससे यह सिद्ध हुआ कि प्रेमसे भी इच्छाओंका त्याग अनायास ही हो सकता है।

जितनी भी उपभोगकी इच्छाएँ हैं, वे सब शरीरमें अहंभाव हो जानेके कारण उत्पन्न होती हैं। शरीरके साथ एकता न होनेपर किसीके मनमें उपभोगकी इच्छा नहीं होती। अत: विचारके द्वारा जब मनुष्य यह समझ लेता है कि 'शरीर मैं नहीं हूँ' तब भोगेच्छाओंका त्याग अपने-आप हो जाता है और इच्छाओंका सर्वथा अभाव हो जाना ही अन्त:करणकी शुद्धि है।

त्याग और प्रेमका घनिष्ठ सम्बन्ध है। प्रेमसे त्याग होता है और त्यागसे प्रेम पुष्ट होता है। अत: साधकको चाहिये कि अपने प्रेमास्पद प्रभुके नाते हरेक प्राणीको सुख पहुँचानेकी भावना करता रहे। इस भावनासे मनुष्यका अन्त:करण बहुत ही शीघ्र शुद्ध होता है और विशुद्ध अन्त:करणमें प्रेमास्पद प्रभुके प्रेमकी लालसा अपने-आप प्रकट हो जाती है।

साधकको चाहिये कि प्राप्त शक्तिके द्वारा प्रभुके नाते दूसरोंके अधिकारकी पूर्ति करता रहे और किसीपर अपना कोई अधिकार न समझे। शरीर-निर्वाहके लिये आवश्यक पदार्थोंको भी दूसरोंकी प्रसन्नताके लिये, उनके अधिकारको सुरक्षित रखनेके लिये ही स्वीकार करे, जो कि लेनेके रूपमें भी देना ही है; क्योंकि इस शरीरसे जिनके अधिकारकी पूर्ति होती है, उनका ही तो इसपर अधिकार है। जब साधक शरीर और प्राप्त वस्तु तथा सब प्रकारकी शक्तियोंको अपने प्रभुकी मानता है, उनपर अपना कोई अधिकार नहीं मानता, उनसे किसी प्रकारके उपभोगकी आशा भी नहीं करता, तब उसके द्वारा जो कुछ होता है, वह त्याग और प्रेम ही है, जो अन्त:करणकी शुद्धिका मुख्य साधन है।

प्रेमका अधिकारी प्रेमी ही होता है, भोगी नहीं; क्योंकि उपभोगसे प्रेममें शिथिलता आ जाती है। यदि गम्भीरतासे विचार किया जाय तो यह समझमें आ जाता है कि जीव और ईश्वर दोनों ही प्रेमी हैं। इनमेंसे कोई भी भोगी नहीं है। जीवमें जो भोगबुद्धि जाग्रत् होती है, वह केवल देहके सम्बन्धसे होती है, स्वाभाविक नहीं है; और देहका सम्बन्ध अविचारसिद्ध है, यह सभी दर्शनकार मानते हैं। अत: प्रेमके लिये विवेकपूर्वक देहसे असंग होकर चाहरहित होना परम आवश्यक है।

ईश्वर और जीव दोनों प्रेमी होते हुए भी दोनोंके प्रेममें बड़ा अन्तर होता है; क्योंकि ईश्वर चाहसे

रहित और समर्थ भी है। जीव चाहसे रहित तो है, परंतु समर्थ नहीं है। जीवमें प्रेमकी भूख है, इसलिये वह प्रेम करता है और ईश्वर माधुर्यभावसे प्रेरित होकर जीवको प्रेम प्रदान करनेके लिये उससे प्रेम करता है। ईश्वर सब प्रकारसे पूर्ण और सर्वथा असंग है, अत: उसमें किसी प्रकारकी चाह नहीं होती।

जीव जो भोगोंका और उनकी चाहका त्याग करता है, उसमें कोई महत्त्वकी बात नहीं है; क्योंकि भोगोंको भोगनेका परिणाम तो रोग है। उससे बचनेके लिये उनका त्याग अनिवार्य है। इसके सिवा जीवको जो कुछ वस्तु और कर्मशक्ति प्राप्त है, वह भी ईश्वरकी ही दी हुई है। अत: उनका त्याग करना भी कोई बड़ी भारी उदारता नहीं है। इसी प्रकार सद्गतिके लालचका त्याग कर देना भी कोई महत्त्वकी बात नहीं है; क्योंकि सब प्रकारके भोगोंकी चाहसे रहित होनेपर दुर्गति तो होती ही नहीं। इतनेपर भी जीवकी इस ईमानदारीको अर्थात् उसके नाममात्रके त्यागको भी ईश्वर अपने सहज कृपालु स्वभावसे जीवकी बड़ी भारी उदारता मानते हैं और जीवपर ऐसा प्रेम करते हैं कि स्वयं पूर्णकाम होनेपर भी जीवसे प्रेम करनेकी कामनाका अपनेमें आरोप कर लेते हैं; क्योंकि प्रेम ईश्वरका स्वभाव है और जीवकी माँग है। अत: जो उनसे प्रेम करता है, ईश्वर उसका अपनेको ऋणी मानते हैं। सचमुच एकमात्र ईश्वर ही प्रेमी हैं; क्योंकि प्रेम प्रदान करनेकी सामर्थ्य अन्य किसीमें नहीं है।

भोगी मनुष्य प्रेमका अधिकारी नहीं होता। वह तो सेवाका अधिकारी है। प्रेमका अधिकारी तो चाहसे रहित ही होता है, क्योंकि चाहयुक्त व्यक्तिके साथ किया हुआ प्रेम स्थायी नहीं होता। वह उस प्रेमको भी अपनी चाह-पूर्तिका साधन मान लेता है। अत: प्रेमका आदर नहीं कर पाता।

गो-चिन्तन—

विज्ञानकी कसौटीपर गोदुग्ध और गोघृत

(श्रीबरजोरसिंहजी)

गौमाताप्रदत्त पंचगव्य—दूध, दही, घी, गोमूत्र और गोबर अनेक प्रकारके रोगोंके उपचारमें प्रयोग होता है। महर्षि चरक, सुश्रुत, धन्वन्तरि, वाग्भट तथा अन्य अनेकों आयुर्वेदाचार्योंद्वारा रचित चिकित्साशास्त्रके ग्रन्थोंमें पुरातनकालके महर्षियोंका रोगोपचारसम्बन्धी पंचगव्यका प्रयोग देखने एवं पढ़नेको मिलता है।

गौमाताका दूध अमृतके समान गुणकारी तथा अत्यन्त सुपाच्य होता है, इसके दूधमें ३.५ से ४ प्रतिशततक चिकनाई होती है, जबकि भैंसके दूधमें ५.५से ६ प्रतिशततक चिकनाई होती है। विश्व-स्वास्थ्य-संगठन (W.H.O.)-के अनुसार मानव-शरीरके हितमें ४.५से ५ प्रतिशततक वसा पर्याप्त है। इससे अधिक वसा मानवके लिये हानिकारक है। भैंसके दूधमें चिकनाईकी मात्रा अधिक होती है, जो व्यक्तिकी नाड़ियोंमें जम जाती है। भैंसके दूधमें कोलेस्ट्रॉल होता है, जो दिलके दौरे (हार्टअटैक)-का कारण बनता है। हृदयरोग होनेकी घबराहटमें देशी घी, जिसमें लोगोंने गायके घीको भी बन्द कर दिया और वनस्पति घी आदिका उपयोग करने लगे। लेकिन इसमें पाया जानेवाला फैट ट्रांस फैट होता है, जो अधिक हानिकर है। ट्रांस फैट ४२ डिग्री सेंटीग्रेडपर पिघलता है, जबकि हमारा शरीर ३६ डिग्री सेंटीग्रेड तापमानतक पिघलनेवाली वस्तुएँ ही पचा सकता है। इस कारणसे जो ट्रांस फैट होता है, वह शरीरमें बिना पचे पड़ा रहकर कोलेस्ट्रॉल ही बढ़ाता है।

पाश्चात्य चिकित्सकोंद्वारा सभीका ध्यान दूध-घीसे हटाकर विटामिनपर केन्द्रित करनेके लिये जोर-शोरसे सब्जियों एवं अण्डे आदिका प्रचार किया गया, जबकि गोदुग्धमें विटामिन बहुतायतसे पाये जाते हैं। गोमाताका दूध हमारे शरीरको निरोगी रखनेवाला तथा बुद्धिवर्धक है। महाभारतमें यक्षका प्रश्न है—'अमृत क्या है?' उत्तरमें युधिष्ठिर कहते हैं—'गायका दूध अमृत

है।' पुरातनकालसे देवताओं, ऋषियों, मुनियों, योगियों, तपस्वियोंका प्रधान आहार गोदुग्ध ही रहा है।

गोमाताके दूधमें स्वर्णिम आभावाला कैरोटिन तत्त्व (पदार्थ) होता है, जो शरीरमें स्वर्णधातुकी पूर्ति करता है। गोदुग्धका पीलापन या स्वर्ण-जैसी आभा उसमें निहित स्वर्णतत्त्व ही है। स्वर्ण हृदयरोगके निदानके लिये अति आवश्यक तत्त्व है। गोमाताका दूध और गोमाताका घी हृदयकी शिकायतोंके लिये या हृदयमें आयी कमीके लिये सुरक्षा-कवच है।

आयुर्वेदके अनुसार हृदय-रोग कई कारणोंसे होता है; जैसे बिलकुल परिश्रम न करना, मशीनकी तरह अत्यधिक परिश्रम करना, अधिक मात्रामें तीक्ष्ण भोजन करना, शक्तिसे अधिक दौड़ना तथा भय, चिन्ता, त्रास-विरेचन, अधिक वमन, अधिक मद्यपान एवं धूम्रपान करना, हृदयमें चोट लगना, हर समय मानसिक तनावमें रहना। इसके अतिरिक्त जब हमारे शरीरके भीतर अत्यधिक दूषित पदार्थोंका संचय हो जाता है, तब उसके द्वारा हमारा हृदय आक्रान्त हो जाता है और हम हृदयरोगी बन जाते हैं। यदि हम हृदयरोग होनेके कारणोंसे अपनेको बचाते हैं और स्वर्णिम आभावाले कैरोटिन तत्त्वका सेवन करते हैं तो हम अपने-आपका हृदयरोगसे बचाव कर सकते हैं। ध्यान रहे कि केवल गोघृतमें ही यह पीले रंगका कैरोटीन (स्वर्णतत्त्व) पाया जाता है, अन्य घृतोंमें नहीं पाया जाता है। खोज करनेमें यह बात सामने आयी है कि मुख, फेफड़े, मूत्राशय आदि अनेक अंगोंमें कैंसर रोगका प्रमुख कारण शरीरमें कैरोटीन तत्त्वकी कमीका पाया जाना है। कैरोटीन तत्त्व शरीरमें पहुँचकर विटामिन ए तैयार करता है। नेत्ररोगोंमें तो यह अत्यन्त लाभकारी है। यह कैरोटीन बुद्धि, सौन्दर्य, कान्ति एवं स्मृतिको बढ़ाता है। कैरोटीन ताजे गोघृतमें ही रहता है, जैसे-जैसे गोघृत पुराना होता जाता है, वैसे-वैसे उसका कैरोटीन समाप्त होता जाता है। वैज्ञानिकोंकी मान्यता है कि गायके १० ग्राम घीकी यज्ञमें आहुति देनेसे लगभग १ टनसे अधिक ऑक्सीजन उत्पन्न होती है। इसीलिये हमारे पूर्वजोंने यज्ञ-हवन करनेको महत्त्व दिया और सामाजिक एवं धार्मिक कार्योंमें यज्ञ-हवनका होना अनिवार्य कर दिया। देवी-देवताओंकी पूजामें एकमात्र गौमाताके घी-दूधका ही प्रयोग होता है, अन्य किसी भी प्राणीका घी-दूध प्रयोग नहीं किया जाता। गौमाताके घीमें कैंसरसे लड़नेके गुण मौजूद हैं। अन्य किसी भी प्राणीके घीमें यह क्षमता नहीं है। गौमाताका दही और मट्ठा (छाछ) उदर (पेट)-के लिये अमृत है। गायका मट्ठा वात, पित्त, कफ तीनों दोषोंका शमन करनेवाला, भूखको बढ़ानेवाला, कब्जनाशक तथा बवासीरको जड़से खत्म करनेवाला है। मट्ठा अपनी खटाससे वातका, मधुरतासे पित्तका और कषैलेपनसे कफका शमन करता है। इसे त्रिदोषनाशक माना गया है। मट्ठा मनुष्योंके लिये हितकारी-गुणकारी अमृतके समान है।

यहाँपर मैं एक बार फिर कहना चाहूँगा कि गोमाताके दूध और घीके सेवनसे शरीरकी रोग-प्रतिरोधक क्षमता आश्चर्यजनक रूपसे बढ़ जाती है और हृदयाघातकी सम्भावना कम हो जाती है। इसलिये आप यदि रख सकते हों तो एक गोमाताको अपने घरमें अवश्य रखें। गोमाताकी सेवासे सारे पुण्य अर्जित करें। गोसेवाके माहात्म्यकी चर्चा करते हुए कहा गया है—

तीर्थस्नानेषु यत्पुण्यं यत्पुण्यं विप्रभोजने।
सर्वव्रतोपवासेषु सर्वेष्वेव तपःसु च॥
यत्पुण्यं च महादाने यत्पुण्यं हरिसेवने।
यत्पुण्यं प्राप्यते सद्यः केवलं धेनुसेवया॥

अर्थात् जो पुण्य तीर्थोंके स्नानमें है, जो पुण्य ब्राह्मणोंको भोजन करानेमें है, जो पुण्य व्रतोपवास तथा तपस्याद्वारा प्राप्त होता है, जो पुण्य श्रेष्ठ दान देनेमें है और जो पुण्य देवताओंकी अर्चनामें है, वह पुण्य तो केवल गौमाताकी सेवासे ही तुरन्त प्राप्त हो जाता है।

होमधेनु गोमाताकी जो पूजा करता है, वह इस लोकमें अभ्युदय तो प्राप्त करता ही है, मरनेके बाद भी उसे स्वर्गलोककी प्राप्ति होती है। (तैत्तिरीय ब्राह्मण)

साधनोपयोगी पत्र

(१)

भगवान्‌की नासमझी नहीं, उनकी उदारता और करुणा

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आपके प्रश्नोंका संक्षिप्त उत्तर इस प्रकार है—

(१) अजामिल जातिके ब्राह्मण थे। सदाचारी थे। परंतु एक शूद्रजातीय कुलटा स्त्रीमें आसक्त होकर उसीके साथ रहने लगे। उन्होंने अपने छोटे पुत्रका नाम नारायण रखा था। मृत्युके समय यमदूतोंके भयसे उन्होंने अपने पुत्रको ही 'नारायण' 'नारायण' कहकर पुकारा था। परंतु किसी भी निमित्तसे यदि भगवान्‌का नाम जीवनके अन्तिम श्वासमें मुखसे निकल जाय, तो भगवान् उसका निश्चय ही कल्याण करते हैं। नामके इस सहज गुणका और अपने विरदका निबाह करनेके लिये भगवान्‌ने 'नारायण' नामका उच्चारण होते ही अपने दूत उनके पास भेज दिये और उन्होंने यमदूतोंके हाथसे अजामिलको बचा लिया। इसको भगवान्‌की नासमझी बतलाना, अपनी 'नासमझी'का परिचय देना है। इसमें तो आपको वस्तुतः भगवान्‌के स्वभावकी सहज उदारता और अकारण करुणाके दर्शन होने चाहिये।

(२) गीताका पाठ तथा उत्तम ग्रन्थोंका स्वाध्याय करनेवाला भी यदि क्रोध न छोड़ सके, तो यह उसकी दुर्बलता ही है। क्रोध-त्यागका उपाय है—निज दोष-दर्शन और सर्वत्र भगवद्दर्शन। प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक जीव श्रीभगवान्‌का स्वरूप है, ऐसा समझने-देखनेसे विरोधभाव शान्त हो जाता है।

(३) श्रीहनुमान्‌जीने जब मशक-समान रूप धारण किया, तब अँगूठी कहाँ रही? वास्तवमें श्रीहनुमान्‌जीका महत्त्व न जाननेसे ही मनमें इस प्रकारकी कुशंका उत्पन्न होती है। जो श्रीहनुमान्‌जी अपने पर्वताकार शरीरको मच्छरके समान अत्यन्त छोटा बना सकते हैं, वे उस अँगूठीको भी इतनी छोटी बना सकते हैं कि मच्छर होनेपर भी लिये रह सकें। इतनी साधारण-सी बात तो समझमें आ ही जानी चाहिये।

(४) स्त्री-जातिको 'अबला' उनका तिरस्कार करनेके लिये नहीं कहा गया है। वह प्रेममयी पत्नी है और स्नेहमयी माँ है। अपने पति-पुत्रोंके सामने कभी बलका प्रदर्शन नहीं करती। निरन्तर उनकी मंगलकामना करती हुई प्रेममयी और स्नेहमयी बनी रहती है। विश्व-विध्वंसकारी क्रोधमें भरे अमित बलवीर्य-सम्पन्न भगवान् नृसिंह शिशु प्रह्लादके सामने आते ही सारे बलको भूलकर तथा क्रोधरहित होकर उसे गोदमें ले लिये और चाटने लगे। रणरंगिणी दुष्टदलनकारिणी भगवती दुर्गा अपने स्वामी शंकरके सामने सदा विनम्र रहकर अबला-सी बनी रहती हैं। इसमें बलका अभाव नहीं है, बलके प्रदर्शनका अभाव है। शेष भगवत्कृपा।

(२)

सद्‌गुरुका महत्त्व

प्रिय महोदय! सादर सप्रेम हरिस्मरण। आपका कृपापत्र मिला। आपका लिखना सर्वथा सत्य है। अज्ञानान्धकारसे हटाकर भगवत्स्वरूपके पुण्यप्रकाशमें पहुँचा देनेवाले गुरुका महत्त्व भगवान्‌से भी अधिक माना जाता है। पता नहीं, सद्‌गुरुकी कृपासे कितने प्राणी दुराचारका त्याग करके नरकानलसे बच गये हैं और बच रहे हैं। गुरु भगवत्स्वरूप ही हैं। ऐसे सद्‌गुरु बड़े ही पुण्यबल और भगवान्‌की कृपासे प्राप्त होते हैं। सद्‌गुरुके चरणोंमें बार-बार नमस्कार।

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

'गुरु ही ब्रह्मा हैं, गुरु ही विष्णु हैं, गुरु ही महान् ईश्वर महादेव हैं, गुरु ही साक्षात् परब्रह्म हैं, उन गुरुके चरणोंमें नमस्कार। ज्ञानांजनकी सलाईसे अज्ञानरूपी तमसे अन्धेकी आँखोंको खोल देनेवाले गुरुके चरणोंमें नमस्कार।' गुरुकी महिमा अवर्णनीय है। जगत्‌के समस्त विकारोंका

नाश करनेके लिये ऐसे सद्गुरु ही संजीवन-सुधा हैं। घोर पाप-तापके प्रचण्ड प्रवाहमें बहते हुए प्राणीकी रक्षाके लिये स्वयं गुरुदेव ही सुदृढ़ जहाज और वे ही उसके कर्णधार हैं। इसलिये गुरुका विरोध करना साधारण पाप ही नहीं, सीधा नरकको निमन्त्रण है। पर वस्तुत: यह महिमा शिष्यके अज्ञान एवं पाप-तापादिका हरण करनेवाले सद्गुरुकी ही है, कामिनी-कांचनके लोभी बाजारी गुरुओंकी नहीं। गोस्वामीजी महाराज कहते हैं—

गुरु सिष बधिर अंध कर लेखा। एक न सुनइ एक नहिं देखा॥
हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घर नरक महुँ परई॥

आजकल चारों ओर गुरुओंकी भरमार है, कौन सद्गुरु हैं, कौन नकली हैं—इसका पता लगना सहज नहीं है। इस स्थितिमें किसी अन्धेके हाथमें लकड़ी पकड़ा देनेवाले अन्धेकी जो दुर्दशा होती है, वही इन गुरु-शिष्योंकी होती है। अतएव वर्तमान समयमें गुरुकरण बहुत ही जोखिमकी चीज है। भगवान् सहज जगद्गुरु हैं, उन्हींका आश्रय ग्रहण करना चाहिये। आज जिस प्रकारका दम्भ-छल-कपट चल रहा है, चारों ओर जो अध:पतनकी धूम मची है, इसमें किसीको गुरु स्वीकार करके उसे अपना सर्वस्व मानना, उसकी एक-एक बातको ईश्वर-वाक्य मानकर स्वीकार करना और उसे तन-मन-धन सौंप देना बुद्धिमानीका काम नहीं है। इसमें बहुत अधिक धाखेकी सम्भावना है। खास करके, स्त्रियोंको तो इससे अवश्य ही बचना चाहिये। शेष प्रभुकृपा।

(३)

चमत्कारसे सावधान रहिये

प्रिय महोदय! सप्रेम हरिस्मरण। आपका पत्र मिला। उत्तरमें निवेदन है कि जो लोग आपका गुणगान करते हैं, आपके अनुकूल ही सब बातें करते हैं, आपकी हाँ-में-हाँ मिलाते हैं, आपको व्यसनोंमें लगाते हैं, आपको इन्द्रिय-सुख तथा सांसारिक भोगोंकी प्राप्तिका प्रलोभन देते हैं अथवा चमत्कार दिखाकर तुरन्त भगवान्को मिला देनेकी बात कहते हैं— उनसे सदा सावधान रहना चाहिये।

आपने जो चमत्कारकी बातें लिखी हैं—भगवान्का प्रत्यक्ष प्रसाद मँगा देना, भगवान्के साक्षात् दर्शन कराना, भगवान्की दिव्य-ज्योतिके दर्शन कराना, भगवान्की आरती दिखाना और खास करके तरुणी स्त्रियोंको ही इन सब भगवत्कृपाओंकी अधिकारिणी बताना—मेरी समझसे तो धोखामात्र है। मुझे ऐसे कई प्रसंगोंका पता है, जहाँ लोग ऐसे चमत्कारोंके नामपर बुरी तरह ठगे गये हैं। आपको सावधान होना चाहिये तथा अपने यहाँके लोगोंको खास करके स्त्रियोंको सावधान कर देना चाहिये। नहीं तो वे बुरी तरह चमत्कारके चंगुलमें फँसकर अपने धन-धर्मका नाश कर सकती हैं।

वे महात्मा पूजा करवाते हैं, धन भी प्रकारान्तरसे खूब लेते हैं। लोग उन्हें भगवान् मानते हैं—यह सब भी खतरेकी चीजें हैं।

साधु-सेवा करना तथा साधुसंगसे लाभ उठाकर भगवान्के भजनमें प्रवृत्त होना तो मनुष्यमात्रके लिये आवश्यक कर्तव्य है, पर जहाँ स्त्री तथा शरीर-पूजाकी माँग हो, वहाँ सावधान हो जाना चाहिये, चाहे वहाँ भगवान्के प्रत्यक्ष दर्शन करानेकी ही बात कही जाती हो। सन्ध्या-वन्दन प्रतिदिन कम-से-कम दोनों समय करना चाहिये। कम-से-कम एक माला गायत्रीका जप द्विजमात्रको करना चाहिये। जो महात्मा सन्ध्या-गायत्रीके त्याग, सदाचारके त्याग तथा शास्त्रोंको न माननेका आदेश देते हैं, उनसे भी सावधान रहना चाहिये। फिर जो असत्य तथा छलका उपदेश देते हों, सदाचारके त्यागको तथा यथेच्छाचारको ही प्रेम बताते हों, भगवान्के नामके बदले अपने नाम तथा भगवान्के स्वरूपके बदले अपने स्वरूपका ध्यान करनेकी बात कहते हों, उनसे तो विशेष सावधान रहना है।

समय कलियुगका है। सभी ओर दम्भ छाया है। भेड़की खालमें भेड़िये घुसे हैं, सन्तके नामपर लोभी, लालची सर्वत्र फैल रहे हैं, साहूकारके नामसे चोरोंका बाजार चल रहा है। इस समय विशेष सावधानी रखिये।

बस, भगवान्का भजन कीजिये, सदाचारका पालन कीजिये। माता-पिताकी सेवा कीजिये। प्रभु-प्रीत्यर्थ घरका काम सचाई, ईमानदारी तथा परिश्रमसे कीजिये। इसीमें कल्याण है, शेष भगवत्कृपा।

व्रतोत्सव-पर्व

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-ऋतु, कार्तिक-कृष्णपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा रात्रिमें ९। ३७ बजेतक	रवि	भरणी रात्रिमें ८।५५ बजेतक	१ नवम्बर	**वृषराशि** रात्रिमें ३। ३१ बजेसे।
द्वितीया ,, ११।२९ बजेतक	सोम	कृत्तिका ,, ११।१९ बजेतक	२ ,,	**अशून्यशयनव्रत।**
तृतीया ,, १।३ बजेतक	मंगल	रोहिणी ,, १। २२ बजेतक	३ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। १६ बजेसे रात्रिमें १। ३ बजेतक।
चतुर्थी ,, २।८ बजेतक	बुध	मृगशिरा ,, ३। ० बजेतक	४ ,,	**मिथुनराशि** दिनमें २।१२ बजेसे, **संकष्टी (करवाचौथ) श्रीगणेशचतुर्थीव्रत, चन्द्रोदय** रात्रिमें ७।५६ बजे।
पंचमी ,, २।४६ बजेतक	गुरु	आर्द्रा रात्रिशेष ४।१० बजेतक	५ ,,	× × × ×
षष्ठी ,, २।५३ बजेतक	शुक्र	पुनर्वसु ,, ४।५० बजेतक	६ ,,	**भद्रा** रात्रिमें २।५३ बजेसे , **कर्कराशि** रात्रिमें १०।४० बजेसे, **विशाखाका सूर्य** रात्रिमें ८।५३ बजे।
सप्तमी ,, २।२९ बजेतक	शनि	पुष्य ,, ४।५९ बजेतक	७ ,,	**भद्रा** दिनमें २। ४१ बजेतक, **मूल** रात्रिशेष ४।५९ बजेसे।
अष्टमी ,, १।३६ बजेतक	रवि	आश्लेषा ,, ४।४२ बजेतक	८ ,,	**सिंहराशि** रात्रिशेष ४।४२ बजेसे, **अहोईव्रत।**
नवमी ,, १२।१८ बजेतक	सोम	मघा रात्रिमें ४। ० बजेतक	९ ,,	**मूल** रात्रिमें ४। ० बजेतक।
दशमी ,, १०।४० बजेतक	मंगल	पू०फा० ,, २।५७ बजेतक	१० ,,	**भद्रा** दिनमें ११। २९ बजेसे रात्रिमें १०। ४० बजेतक।
एकादशी ,, ८।४१ बजेतक	बुध	उ०फा० ,, १। ३० बजेतक	११ ,,	**रम्भा एकादशीव्रत (सबका), कन्याराशि** दिनमें ८। ३६ बजेसे।
द्वादशी ,, ६।३० बजेतक	गुरु	हस्त ,, १२। ६ बजेतक	१२ ,,	**गोवत्सद्वादशी, प्रदोषव्रत, धनतेरस।**
त्रयोदशी सांय ४।११ बजेतक	शुक्र	चित्रा ,, १०। २८ बजेतक	१३ ,,	**भद्रा** सायं ४। ११ बजेसे रात्रिमें ३। ० बजेतक, **तुलाराशि** दिनमें ११। १८ बजेसे, **धन्वन्तरि-जयन्ती, नरकचतुर्दशीव्रत, श्रीहनुमज्जयन्ती।**
चतुर्दशी दिनमें १।४९ बजेतक	शनि	स्वाती ,, ८।४७ बजेतक	१४ ,,	**दीपावली।**
अमावस्या ,, ११। २७ बजेतक	रवि	विशाखा ,, ७। ९ बजेतक	१५ ,,	**अमावस्या, वृश्चिकराशि** दिनमें १।३३ बजेसे, **अन्नकूट, काशीसे अन्यत्र गोवर्धन-पूजा।**

सं० २०७७, शक १९४२, सन् २०२०, सूर्य दक्षिणायन, शरद्-हेमन्त-ऋतु, कार्तिक-शुक्लपक्ष

तिथि	वार	नक्षत्र	दिनांक	मूल, भद्रा, पंचक तथा व्रत-पर्वादि
प्रतिपदा दिनमें ९।१२ बजेतक	सोम	अनुराधा सायं ५।४० बजेतक	१६ नवम्बर	**काशीमें गोवर्धनपूजा, भैयादूज, यमद्वितीया, मूल** सायं ५। ४० बजेसे, **वृश्चिक-संक्रान्ति** रात्रिमें ६। ४६ बजे, **हेमन्त-ऋतु प्रारम्भ।**
द्वितीया प्रात: ७।६ बजेतक	मंगल	ज्येष्ठा ,, ४। २२ बजेतक	१७ ,,	**धनुराशि** सायं ४। २२ बजेसे।
चतुर्थी रात्रिमें ३।४५ बजेतक	बुध	मूल दिनमें ३। २२ बजेतक	१८ ,,	**मूल** दिनमें ३। २२ बजेतक, **भद्रा** सायं ४। ३१ बजेसे रात्रिमें ३। ४५ बजेतक, **वैनायकी श्रीगणेशचतुर्थीव्रत।**
पंचमी ,, २।४० बजेतक	गुरु	पू०षा० ,, २। ४१ बजेतक	१९ ,,	**मकरराशि** रात्रिमें ८। ३७ बजेसे, **अनुराधाका सूर्य** रात्रिमें १। ४८ बजे।
षष्ठी ,, २। १ बजेतक	शुक्र	उ०षा० ,, २। २६ बजेतक	२० ,,	**सूर्यषष्ठीव्रत।**
सप्तमी ,, १।५१ बजेतक	शनि	श्रवण ,, २। ३९ बजेतक	२१ ,,	**भद्रा** रात्रिमें १।५१ बजेसे, **कुम्भराशि** रात्रिमें ३। २ बजे, **पंचकारम्भ** रात्रिमें ३। २ बजे।
अष्टमी ,, २।१४ बजेतक	रवि	धनिष्ठा ,, ३। २२ बजेतक	२२ ,,	**भद्रा** दिनमें २। ३ बजेतक, **गोपाष्टमी, सायन धनुका सूर्य** दिनमें २। १८ बजे।
नवमी ,, ३। ८ बजेतक	सोम	शतभिषा सायं ४।३६ बजेतक	२३ ,,	**अक्षयनवमी।**
दशमी ,, ४।२८ बजेतक	मंगल	पू०भा० रात्रिमें ६।१७ बजेतक	२४ ,,	**मीनराशि** दिनमें ११।५१ बजेसे।
एकादशी रात्रिशेष ६। १४ बजेतक	बुध	उ० भा० ,, ८। २३ बजेतक	२५ ,,	**भद्रा** सायं ५। २२ बजेसे रात्रिशेष ६। १४ बजेतक, **प्रबोधिनी एकादशीव्रत (स्मार्त्त), तुलसीविवाह, मूल** रात्रिमें ८। २३ बजेसे।
द्वादशी अहोरात्र	गुरु	रेवती ,, १०। ४७ बजेतक	२६ ,,	**मेषराशि** रात्रिमें १०। ४७ बजे, **पंचक समाप्त** रात्रिमें १०। ४७ बजे, **एकादशीव्रत (वैष्णव)।**
द्वादशी प्रात: ८।१५ बजेतक	शुक्र	अश्वनी ,, १। २३ बजेतक	२७ ,,	**प्रदोषव्रत, मूल** समाप्त रात्रिमें १। २३ बजे।
त्रयोदशी दिनमें १०।२६ बजेतक	शनि	भरणी ,, ३।५९ बजेतक	२८ ,,	**श्रीवैकुण्ठचतुर्दशीव्रत।**
चतुर्दशी ,, १२।३२ बजेतक	रवि	कृत्तिका ,, ६। २५ बजेतक	२९ ,,	**भद्रा** दिनमें १२। ३२ बजेसे रात्रिमें १। २९ बजेतक, **वृषराशि** दिनमें १०। ३५ बजेसे, **व्रत-पूर्णिमा।**
पूर्णिमा ,, २।२६ बजेतक	सोम	रोहिणी अहोरात्र	३० ,,	**कार्तिक पूर्णिमा, कार्तिकस्नान** समाप्त।

श्रीभगवन्नाम-जपकी शुभ सूचना

(इस जपकी अवधि कार्तिक पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०७६ से चैत्र पूर्णिमा, विक्रम-संवत् २०७७ तक रही है)

ते सभाग्या मनुष्येषु कृतार्था नृप निश्चितम्।
स्मरन्ति ये स्मारयन्ति हरेर्नाम कलौ युगे॥

'राजन्! मनुष्योंमें वे लोग भाग्यवान् हैं तथा निश्चय ही कृतार्थ हो चुके हैं, जो इस कलियुगमें स्वयं श्रीहरिका नाम-स्मरण करते और दूसरोंसे नाम-स्मरण करवाते हैं।'

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—इस वर्ष भी इस षोडश नाम-महामन्त्रका जप पर्याप्त संख्यामें हुआ है। विवरण इस प्रकार है—

(क) मन्त्र-संख्या ७२,९४,९५,४०० (बहत्तर करोड़, चौरानबे लाख, पञ्चानबे हजार, चार सौ)।

(ख) नाम-संख्या ११,६७,१९,२६,४०० (ग्यारह अरब, सड़सठ करोड़, उन्नीस लाख, छब्बीस हजार, चार सौ)।

(ग) षोडश नाम-महामन्त्रके अतिरिक्त अन्य मन्त्रोंका भी जप हुआ है।

(घ) बालक, युवक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष, गरीब-अमीर, अपढ़ एवं विद्वान्—सभी तरहके लोगोंने उत्साहसे जपमें योग दिया है। भारतका शायद ही कोई ऐसा प्रदेश बचा हो, जहाँ जप न हुआ हो। भारतके अतिरिक्त बाहर कनाडा, फ्रामिंघम, मलेसिया, मेलबोर्न, मिडिलटाउन, यू०के०, यू०एस०ए०, यूनाइटेड किंगडम, नेपाल आदिसे भी जप होनेकी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं।

स्थानोंके नाम—

अंजनु, अंता, अंधेरी, अंबाला, अंबेडकर चौक, अकबरपुर, अकोला, अचरोल, अचानामुरली, अचारपुरा, अजमेर, अजीतगढ़ अमरसर, अड़सीसर अडावद, अनगाँव, अनघौरा, अबोहर, अमरकंटक, अमरवाड़ा, अमरावती, अमरावतीघाट, अमृतपुर, अमृतसर, अरनिया-जोशी, अरनेठा, अलवर, अलवाई, अलीगंज, अलीपुरकला, अवन्तिकानगर, असवार, असोहा, अहमदाबाद, आऊवा, आगरा, आगरमालवा, आग्राम, आडंद, आनन्दनगर, आबूरोड, आमगाँवबड़ा, आमळा, आला [नेपाल], आवसर, आष्टा, इंदिरानगर, इंदा, इंदौली, इंदौर, इंद्राना, इचलकरंजी, इजोत, इतवारी खुर्द, इन्दरवास, इलाहाबाद, इसौली, उखुल, उज्जैन, उदयगीर, उदयपुर, उदरामसर, उधरनपुर, उमरिया, उरतुम, उलपुरा, उल्हासनगर, उसनाडकला, उस्मानाबाद, ऊदपुर, उसरी, ऋषिकेश, ओडा, ओराडसकरी, ओबरा, कघारा, कटक, कटरा बाजार, कठुआ, कड़ीला, कदन्ना, कथैया, कनैड, करडावद, करनभाऊ, करनाल, करही (शुक्ल), करीमगंज, करैया जागीर, करौदी, कर्मचारीनगर, कल्याण, कल्याणपुर, कवलपुरामठिया, कसारीडीह, काँकरोली, काँगड़ा, काँग्पोक्पी, काँचीगुडा, काकलचक, काकिंदा, काठमांडो, कानपुर, कानड़ी, कान्दीवली, कामठी, कामता, कालका, कालाडेरा, कालियागंज, कालूखाँड़, कासिमबाजार, किरारी, किसमिरिया, किस्मीदेसर, कीसियापुर, कुक्षी, कुचामनसिटी, कुरमापाली, कुर्मीचक, कुरुक्षेत्र, कुरुसेंडी, कुर्ला, कूड़ाघाट, केंकरा, कैथल, कोईलारी, कोटरा, कोटद्वार, कोटा, कोषदा, कोठी, कोइलहिया, कोथराखुर्द, कोरापुट, कोलकाता, कोलार, कोलिया, कोलीढेक, कोहका, केन्दुझर, कैथापकड़ी, कौहाकुड़ा, कौलेती (नेपाल), कौवाताल, खंजरपुर, खगड़िया, खजरेट, खजुरीरुण्डा, खजूरी, खड़गपुर, खडगवा, खडगवाँकला, खरखो, खाजूवाला, खातीबाग, खानकित्ता, खालिकगढ़, खिरकिया, खिलचीपुर, खुटपला, खुनखुना, खुरपा, खुरपावड़ा, खेड़ारसूलपुर, खेतराजपुर, खेरोट, खेलदेशपाण्डेय, खैराचातर, खैराबाद, गंगातीकलाँ, गंगापुर सिटी, गंगाशहर, गंजवसौदा, गड़कोट, गढ़पुरा, गढ़वसई, गढेरी, गणेती, गनेड़ी, गाँधीनगर, गाजियाबाद, गुंडरदेही, गुड़गाँव, गुडरू, गुड़ाकला, गुढ़ा, गुना,

गुरुग्राम, गुलाबपुरा, गुलेरगुडु, गोकुलनगर, गोकुलेश्वर, गोठड़ा, गोपालगंज, गोपालगढ़, गोपीनाथ अड्डा, गोपेश्वर, गोरखपुर, गोलागोकरननाथ, गौड़ीहार, ग्वालियर, घगोंट, घघरा, घटपुरा, घटोद, घराकड़ा, घरैहली, घाटवा, घाटासेर, घिंचलाय, घिनोट, घिनौर, घुघली, घेवड़ा, घोंच, चंडीगढ़, चन्द्रपुर, चंदला, चंदौली, चंपाघाट, चकदही, चक्कीरामपुर, चपकीबघार, चम्बा, चरघरा, चाँडेल, चाँदखेड़ा, चाण्डक्यपुरी, चारहजारे, चिखलाकला, चिचोली, चित्तौड़गढ़, चित्रकूट, चिराना, चिलौली, चीचली, चुड़ाचाँदपुर, चुरू, चेंगलपट्टू, चेन्नई, चेबड़ी-धगोगी, चैसा, चोपड़ा, चारबड़, चौकाबाग, चौखा, चौखुटिया, चौमहला, चौरास, चौहटन, छकना, छपरा, छाजाका नागल, छापर, छालामुरा, छोटालम्बा, जंघोरा, जगदीशपुरा, जगाधरी, जट्टारी, जनापुर, जबलपुर, जमरोहीकला, जमानी, जमुड़ी, जम्मू, जयपुर, जयप्रभानगर, जरुड़, जलगाँव, जलोदाखाटयान जसवंतढ़, जसो, जॉजगीर, जाजली, जानडोल, जामनगर, जामपाली, जिहुली, जींद, जी०टी० बी० नगर, जीरा, जूनीहातौद, जैतारन, जैतो, जैपुर, जैसलमेर, जोधपुर, जोबनेर, जोस्यूड़ा, जौलजीवी, झहुराटभका, झाँसी, झालीवाड़ा, झुन्झूनू, झूलाघाट, टंगला, टटेड़ा, टबेरी, टिकरीखिलड़ा, टीकमगढ़, टीलाघाम, टेघरा, टोंकखुर्द, डोम्बीवली, टोरडा, टोडारायसिंह, टोसम, ठकुरापार, ठाणे, ठाणी, डकोर, डडमाल, डड़िहथ, डबरा, डबोक, डीग, डीडवाना, डूँगरगढ़, डोंगरिया, डोंविवली, ढाँगू, ढोलवना, तरकडा, तर्भा, तलवार, तामली, तुगाँव, तिसपरी, तिमसिन, तिमिरिया तुलाह,तेलगांना, तेल्हारा, तोक्या, टोपचाँची, तोला, तोरीबारी, तोशम, त्रिमूर्तिनगर, थाणे, थाना, थुलवासा, दडीबा, दत्यारसुनी, दमोह, दरौना, दलसिंहसराय, दहमी, दातारामगढ़, दादावाणी, दादैरा (जुरहरा), देणोक, दामनजोडी, दामोदरपुर, दारानगरगंज, दिल्ली, दुआरी, दुमका, दुमदुम, दुर्ग, दुर्गानगर, देवगलपुर, देवमयीपुरवा, देवरी, देवास, देशनोक, देहरादून, दौसा, द्वारकेशनगर, धरवार, धनसार, धमौरा, धर्मपुरा, धानीखेड़ा, धामणगाँव, धाली, धौलपुर, ध्रांगघा, नगरगाँव, नन्हवाराकला, नयापारा (खुर्द), नयाबाजार, नयीदिल्ली, नरोही, नलवार, नांदन, नाऊडाँड, नाकोट, नागल, नागपुर, नागौर, नाचनी, नाढी, नादकंडा, नाथूखेड़ी, नानगाँव, नाभा, नारायणपुरा, नासिक, नाहली, निगोही, नीमकाथाना, नीमच, नेवादा, नेवारी, नैनवारा, नैवेद, नैनीताल, नोखा, नोनियाकरवल, नोनीहाट, नोनैती, नौगाँव, पंचकूला, पंतगाँव, पंडतेहड़, पंडेर, पंडेश्वर, पंचपेड़ा, पटना, पटनासिटी, पटाड़िया, पट्टी, पटियाला, पत्योरा, पद्मपुर, परतुर, परबतसर, परोक, परोख, पलेई, पाँडेयढौर, पाटई, पाटमऊ, पाली, पाहल, पिंडरई, पिजड़ा, पिछोर, पिठौरागढ़, पिथौरा, पिम्परी, पिलखुवा, पीठीपट्टी, पीलवा, पुणे, पुनासा, पुपरी, पुरुणावान्ध्रगोडा, पुरेना, पूरबसराय, पूर्णियाँ, पोखरनी, पोरबन्दर, पौड़ीकला, पौना, फतेहपुर, फरीदाबाद, फर्रुखाबाद, फागी, फिरवाँसी, फूलपुररामा, फूलवारी, बंगललूरु, बंगलौर, बंबई, बगदड़िया, बगदा, बगुरैया, बघेरा, बछादा, बटाला, बड़गाँव, बड़ालू, बदरवास, बनेड़िया, बनैल, बमेनियाकला, बमोरा, बरड़ा, बरवाला, बरेली, बरोरी, बरोहा, बलरामपुर, बलिगाँव, बसाँव, बसई, बहेरी, , बागपत, बाँगरोद, बाँदनवाड़ा, बाँसवाड़ा, बाँसउरकुली, बादपारी, बामनखेड़ा, बाम्बे, बारा, बारावल, बारीकेल, बलांगीर, बालूमाजरा, बाराकोट (नेपाल) बासोपट्टी, बिगरहिया, बिटोरा (नेपाल), बिजनौर, बिदराली, बिरहाकन्हई, बिलासपुर, बिलोदी, बीकानेर, बीना, बीड़काखेड़ा, बीदार, बीसलपुर, बुटियाना, बुरहानपुर, बुलन्दशहर, बुल्ढाणा, बूँदी, बूँदीका गोड़ा, बेगूँ, बेगूसराय, बेनीगंज, बेरली खुर्द, बेलड़ा, बेनियाकावास, बेलसोन्डा, बेलासद्दी, बेलोना, बैतूल, बैंतूलगंज, बैरसिया, बोंमेकल, बोकारो, बोरनार, बोराडा, बोरीवली, बौली, ब्यावर, ब्यौही, ब्रह्मनवाड़ा, भटिण्डा, भट्टू (बैजनाथ), भड़ूको, भईन्दर, भटगाँव, भरतपुर, भरसी, भलकी, भलस्वाईसापुर, भवराणा, भवानीपुर, भस्मा, भागलपुर, भाड़तू, भाणीसेरा, भावनगर, भादरा, भारीजा, भिण्डुवा,

भिलाई, भिनाय, भिरावटी, भिवण्डी, भीकमगाँव, भीनासर, भीमदासपुर, भीलवाड़ा, भुवनेश्वर, भुसावल, भून्तर, भूराचौक, भूरेवाल, भेडवन, भेमई, भैंसड़ा, भैसबोड, भैसलाना, भोकरदन, भोगपुर, भोड़वालमाजरी, भोपाल, भोपालपुरा, भ्रमरपुर, मंगलूर, मंडी, मंडीडबवाली, मंडलेश्वर, मऊगंज, मकेंग, मगतादीस, मझेवला, मणू, मथुरा, मडलेश्वर, मदाना, मनकापुर, मनसुली, मन्योह, मयानागुड़ी, मलँगवा (नेपाल), मलाँड, मलेनपुरवा, मलोट, मस्सूरा, महराजगंज, महरौनी, महका, महल, महाजन, महादेवा, महासमुन्द, महेन्द्रगढ़, महेशानी, महेश्वर, मांडल, माचलपुर, माजिरकाडा, माडलगढ़, माधोपुर, मानगो, मानसरोवर, मालेगाँव, मावली, मिश्रपुर, मिर्जापुर, मीतली, मीरारोड, मीलवाँ, मुंगेर, मुंगेली, मुंबई, मुकुली, मुजफ्फरपुर, मुरदाकिया, मुरादाबाद, मुलड, मुस्तफाबाद, मूडिया, मूडी, मेंड़ई, मेंहदीपुर बालाजी, मेघौना, मेड़तारोड, मेरठ, मेवड़ा, मैगलगंज, मैनपुरी, मोगा, मोरीजा, मोहननगर दुर्ग, मोहनपुरा, मोहबा, मोहाली, मौजपुर, यमुनानगर, यवतमाल, येवला, रंगिया, रठेरा, रणग्राम, रतनगढ़, रतनपुर, रतनमहका, रतलाम, रत्नाकरपुर, रन्नौद, रसूलपुर, रहली, राजकोट, राजगढ़, राजनगर, राजरूपपुर, राजवंशनगर, राजाका सहसपुर, राजाआहर, रातिया, राधादामोदरपुर, रानीकटरा, रामगढ़, रामद्वारा, रामपुर, रामनगर, रामेश्वरकम्पा, रायगढ़, रायपुर, रायपुररानी, रायपुरशिवाला, रायबरेली, रायला, रींगस, रुड़की, रुद्रपुर, रेवडापुर, रैहन, रोहतक, रोहनी, लक्ष्मणगढ़, लक्ष्मीपुरा, लखनऊ, लखना, लखीमपुर खीरी, लखीबाग, लटेरी, लमतड़ा, लरछुट, लामिया, लालपुर, लारौन, लावन, लासूर, लाहरखेड़ा, सेहान, लिलुआ, लुधियाना, लोधीपारा, लोसिंहा, लोहासिंहा, लोहारा, वगटेढी, वजीरगंज, वड़गाँव, वड़ोदरी, वरकतनगर, वल्लभगढ़, वल्लभनगर, वसंत, वसाँव, वसई, वाकासर बुडकियां, वागोसड़ा, वानासद्दी, वापी, वामोदा, वाराकला, वाराकोटा, वाराणसी, विजयनगर, विदिशा, विद्याधरनगर, विराटनगर, विलखा, विलसन्डा, विवेकानन्दनगर, विशाखापट्टनम, विशाड़, विशुनपुरवा, विस्टान, वीदासर, वीदर, वीरभद्र, वीरसागर वीराड, वेरावल, वैकुंठपुर, वैशालीनगर, वोरावली, व्यावर, शमीरपुर, शाजापुर, शास्त्रीनगर, शाहगंज, शाहतलाई, शाहपुर, शिमला, शिवपुर, शिवली, शिवसागर, शेखावाटी, शेगाँव, श्यामला हिल्स, श्रीकृष्णनगर, श्रीगंगानगर, श्रीडूँगरगढ़, संगावली, संघर, संदणा, सकरी, सतना, सनावद, सपलेड, सपिया, सफीपुर, सरथुआ, सरदमपिंडारा, सरदार शहर, सरयाँज, सरसौंदा, सलापड, सवाई माधोपुर, ससना, सहता, सांगली, सागर, सादाबाद, सादुलपुर, सालान-बी., सारेयाद, साहवा, साहू, सिंगापुर, सिंगहायुसुभपुर, सिकन्दराराऊ, सिकहुला, सिडको, सिमराटाँड, सिरपुर कागजनगर, सिरसा, सिरहौल, सिरेसादगाँव, सिरोही, सिलीगुड़ी, सिवनी मालवा, सिवानी, सीकर, सीनखेड़ा, सीमातल्ला, सुन्दरवाला, सुखलिया, सुगवा, सुजानगढ़, सुजानदेसर, सुधारबाजार, सुरखी, सुरला, सुल्तानपुर, सुरहन, सूरतगढ़, सूरतपुर, सूरत, सेमरामेडौल, सेमराहाट, सेंठा, सेरो, सैंथरा, सोजतरोड, सोनीपत, सोरखी, हटवा, हटिबेरिया, हतीसा, हनुमानगढ़, हमीरपुर, हराबाग, हरिद्वार, हरियाना, हल्द्वानी, हाँसोल, हाँसी, हल्दौर, हल्लीखेड़ा, हसनपालीया, हसनपुर, हसलपुर, हाड़ौती, हातिखुआ, हातोद, हाथीदेह, हाबड़ा, हिंगोली, हिमायतनगर, हिरणमगरी, हिरनौदा, हिर्री, हिसार, हिगोलाकला, हुमरस, हुबली, हुमायूँपुर, हुरमतगंज, हैदराबाद, होडल, होशंगाबाद, होशियारपुर।

नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जग जाला॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता॥
नहिं कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू॥

श्रीभगवन्नाम-जपके लिये विनीत प्रार्थना

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

आज सारे संसारमें जीवनकी जटिलताएँ बढ़ती जा रही हैं। अधिकतर लोग अपनी असीमित भौतिक आवश्यकताओंकी पूर्ति करनेमें संलग्न हैं। वे अपने क्षुद्र स्वार्थकी सिद्धिके लिये दूसरोंका अहित करनेमें भी कोई संकोच नहीं करते। परस्पर ईर्ष्या, द्वेष, वैमनस्य, कलह और हिंसाके वातावरणमें अशान्त स्थिति है। देशके कुछ भागोंमें तो हिंसाका नग्न ताण्डव दिखायी दे रहा है। अधिकतर लोग मानसिक तनावके शिकार बनते जा रहे हैं। कलिका प्रकोप सर्वत्र व्याप्त है। प्रश्न यह होता है कि इस स्थितिका समाधान क्या है? ऋषि-महर्षि, मुनि और शास्त्रोंने इस स्थितिको अपनी अन्तर्दृष्टिसे देखकर बहुत पहलेसे यह घोषित कर दिया है कि 'कलिकालमें मानव-कल्याण और विश्वशान्तिके लिये श्रीहरि-नामके अतिरिक्त कोई दूसरा सुलभ साधन नहीं है।' इसीलिये यह बात जोर देकर शास्त्रोंमें कही गयी है कि 'भगवान् श्रीहरिका नाम ही एकमात्र जीवन है। कलियुगमें इसके अतिरिक्त कोई दूसरा सहारा—चारा नहीं है'—

हरेर्नामैव नामैव नामैव मम जीवनम्।
कलौ नास्त्येव नास्त्येव नास्त्येव गतिरन्यथा॥

(ना०पूर्व० ४१।११५)

हमारे शास्त्रोंके अतिरिक्त अनुभवी संत-महात्माओंने भी भगवन्नाम-स्मरण-जपको कलियुगका मुख्य धर्म (ऐहिक-पारलौकिक कल्याणकारी कर्तव्य) माना है। इतना ही नहीं, जगत्के समस्त धर्म-सम्प्रदाय भी किसी-न-किसी रूपमें भगवान्के नाम-स्मरण-जपके महत्त्वको प्रतिपादित करते हैं। नामके जप-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई भी नियम नहीं है। श्रीचैतन्यमहाप्रभुने भी कहा है—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः।

'हे भगवन्! आपने लोगोंकी विभिन्न रुचि देखकर नित्य-सिद्ध अपने बहुत-से नाम कृपा करके प्रकट कर दिये। प्रत्येक नाममें अपनी सारी शक्ति भर दी और नाम-स्मरणमें देश-काल-पात्रका कोई नियम भी नहीं रखा।'

विपत्तिसे त्राण पानेके लिये आज श्रीभगवन्नामका स्मरण ही एकमात्र उपाय है। ऐसा कौन-सा विघ्न है, जो भगवन्नाम-स्मरणसे नहीं टल सकता और ऐसी कौन-सी वस्तु है, जो नहीं मिल सकती? इस कलिकालमें मंगलमय भगवान्के आश्रयके लिये भगवन्नामका सहारा ही एकमात्र अवलम्बन है। अतएव भारतवर्ष एवं समस्त विश्वके कल्याणके लिये, लौकिक अभ्युदय और पारलौकिक सुख-शान्तिके लिये तथा साधकोंके परम लक्ष्य एवं मानव-जीवनके परम ध्येय—भगवान्की प्राप्तिके लिये सबको भगवन्नामका स्मरण-जप-कीर्तन करना चाहिये।

अतः 'कल्याण' के भाग्यवान् ग्राहक-अनुग्राहक, पाठक-पाठिकाएँ स्वयं तथा अपने इष्ट-मित्रोंसे प्रतिवर्ष भगवन्नाम-जप करते-कराते आये हैं।

गत वर्ष पंचानबे करोड़ नाम-जपकी प्रार्थना की गयी थी। इस वर्ष विभिन्न स्थानोंसे जो सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं; उनके अनुसार बहत्तर करोड़, चौरनबे लाख, पञ्चानबे हजार, चार सौ मन्त्रके नाम-जप हुए हैं। **पिछले वर्षकी अपेक्षा इस वर्ष श्रीभगवन्नाम-जप एवं जापकोंकी संख्यामें थोड़ी वृद्धि हुई है।** भगवन्नाम-प्रेमी महानुभावोंसे प्रार्थना है कि जपकी संख्यामें विशेष उत्साह दिखलायें, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें और वृद्धि हो सके। आशा है, अधिक उत्साहसे नाम-जप होता रहेगा।

जपकर्ताओंकी सूचना अभीतक लगातार आ रही है, किंतु विलम्बसे सूचना आनेपर उसे प्रकाशित करना सम्भव नहीं है। अतः जपकर्ताओंको जप पूरा होने (चैत्र शुक्ल पूर्णिमा)-के अनन्तर तत्काल सूचना प्रेषित करनी चाहिये, जिससे उनके जपकी संख्या प्रकाशित की जा सके।

आप महानुभावोंसे पुनः इस वर्ष पंचानबे करोड़ भगवन्नाम-मन्त्र-जपकी प्रार्थना की जा रही है। यह नाम-जप अधिक उत्साहसे करना तथा करवाना चाहिये, जिससे भगवन्नाम-जपकी संख्यामें उत्तरोत्तर वृद्धि हो।

निवेदन है कि पूर्ववत् कार्तिक शुक्ल पूर्णिमासे जप आरम्भ किया जाय और चैत्र शुक्ल पूर्णिमा (वि० सं० २०७८)-तक पूरा किया जाय। पूरे पाँच महीनेका समय है।

भगवान्के प्रभावशाली नामका जप स्त्री-पुरुष, ब्राह्मण-शूद्र सभी कर सकते हैं। इसलिये 'कल्याण' के भगवद्विश्वासी पाठक-पाठिकाओंसे हाथ जोड़कर विनयपूर्वक प्रार्थना की जाती है कि वे कृपापूर्वक सबके परम कल्याणकी भावनासे स्वयं

अधिक-से-अधिक जप करें और प्रेमके साथ विशेष चेष्टा करके दूसरोंसे भी जप करवायें। नियमादि सदाकी भाँति ही हैं।

(१) जप प्रारम्भ करनेकी तिथि कार्तिक शुक्ल पूर्णिमा (दिनांक ३०। ११। २०२० ई०) सोमवार रखी गयी है। इसके बाद किसी भी तिथिसे जप आरम्भ कर सकते हैं, परंतु उसकी पूर्ति चैत्र शुक्ल पूर्णिमा, वि० सं० २०७८ दिन-मंगलवार (दिनांक २७। ४। २०२१)-को कर देनी चाहिये। इसके आगे भी अधिक जप किया जाय तो और उत्तम है।

(२) सभी वर्णों, सभी जातियों और सभी आश्रमोंके नर-नारी, बालक-वृद्ध, युवा इस मन्त्रका जप कर सकते हैं।

(३) एक व्यक्तिको प्रतिदिन उपरिनिर्दिष्ट मन्त्रका कम-से-कम १०८ बार (एक माला) जप अवश्य ही करना चाहिये, अधिक तो कितना भी किया जा सकता है।

(४) संख्याकी गिनती किसी भी प्रकारकी मालासे अथवा अंगुलियोंपर या किसी अन्य प्रकारसे भी रखी जा सकती है। तुलसीजीकी माला उत्तम होगी।

(५) यह आवश्यक नहीं है कि अमुक समय आसनपर बैठकर ही जप किया जाय। प्रात:काल उठनेके समयसे लेकर चलते-फिरते, उठते-बैठते और काम करते हुए सब समय—सोनेके समयतक इस मन्त्रका जप किया जा सकता है।

(६) बीमारी या अन्य किसी कारणवश जप न हो सके और क्रम टूटने लगे तो किसी दूसरे सज्जनसे जप करवा लेना चाहिये। पर यदि ऐसा न हो सके तो बादमें अधिक जप करके उस कमीको पूरा कर लेना चाहिये।

(७) संख्या मन्त्रकी होनी चाहिये, नामकी नहीं; उदाहरणके रूपमें—

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे॥

—सोलह नामके इस मन्त्रकी एक माला प्रतिदिन जपें तो उसके प्रति मन्त्र-जपकी संख्या १०८ होती है, जिसमें भूल-चूकके लिये ८ मन्त्र बाद कर देनेपर गिनतीके लिये एक सौ मन्त्र रह जाते हैं। अतएव जिस दिन जो भाई-बहन मन्त्र-जप आरम्भ करें, उस दिनसे चैत्र शुक्ल पूर्णिमातकके मन्त्रोंका हिसाब इसी क्रमसे जोड़कर हमें अन्तमें सूचित करें। सूचना भेजनेवाले सज्जनोंको जपकी संख्याके साथ अपना नाम-पता, मोबाइल नम्बर स्पष्ट अक्षरोंमें लिखना चाहिये।

(८) प्रथम सूचना तो मन्त्र-जप प्रारम्भ करनेपर भेजी जाय, जिसमें चैत्र पूर्णिमातक जितनी जप-संख्याका संकल्प किया हो, उसका उल्लेख रहे और दूसरी बार जप आरम्भ करनेकी तिथिसे लेकर चैत्र पूर्णिमातक हुए कुल जपकी संख्या उल्लिखित हो।

(९) प्रथम सूचना प्राप्त होनेपर जपकर्ताको सदस्यता दी जाती है। द्वितीय सूचना भेजते समय सदस्य-संख्या अवश्य लिखनी चाहिये।

(१०) जप करनेवाले सज्जनको सूचना भेजने-भिजवानेमें इस बातका संकोच नहीं करना चाहिये कि जपकी संख्या प्रकट करनेसे उसका प्रभाव नष्ट हो जायगा। स्मरण रहे, ऐसे सामूहिक अनुष्ठान परस्पर उत्साहवृद्धिमें सहायक होकर प्रभावक बनते हैं।

(११) **जापक महानुभावोंको प्रतिवर्ष श्रीभगवन्नाम-जपकी सूचना अवश्य दे देनी चाहिये।**

(१२) सूचना संस्कृत, हिन्दी, मराठी, मारवाड़ी, गुजराती, बँगला, अंग्रेजी, उर्दूमें भेजी जा सकती है।

सूचना भेजनेका पता—

नामजप-कार्यालय, द्वारा—'कल्याण' सम्पादकीय विभाग,
गीताप्रेस, पो०—गीताप्रेस—२७३००५ (गोरखपुर)

प्रार्थी—

राधेश्याम खेमका

सम्पादक—'कल्याण'

राम राम जपु जिय सदा सानुराग रे। कलि न बिराग, जोग, जाग, तप, त्याग रे॥
राम सुमिरत सब बिधि ही को राज रे। राम को बिसारिबो निषेध-सिरताज रे॥
राम-नाम महामनि, फनि जगजाल रे। मनि लिये फनि जियै, ब्याकुल बिहाल रे॥
राम-नाम कामतरु देत फल चारि रे। कहत पुरान, बेद, पंडित, पुरारि रे॥
राम-नाम प्रेम-परमारथको सार रे। राम-नाम तुलसीको जीवन-अधार रे॥

[विनय-पत्रिका]

श्रीभगवन्नाम-जपके जापक महानुभावोंको अपनी स्थायी सदस्य-संख्या एवं नाम-पता (मोबाइल नम्बरसहित) साफ-साफ अक्षरोंमें लिखना चाहिये, जिससे उनके ग्राम/नगरका शुद्ध नाम दिया जा सके। —सम्पादक

कृपानुभूति

लंगूरपर शिवकृपा

नर्मदा नदीपर बाँध बँधनेके पूर्वकी बात है, उस समय मैं वन-अधिकारी था; इसलिये मुझे नर्मदा नदीके उद्गम अमरकंटकसे लेकर मध्य प्रदेश तथा गुजरातकी सीमातक फैले तटवर्ती वनोंमें कार्य करनेका अवसर मिला। इस दौरान मुझे नर्मदा नदीके उत्तरी और दक्षिणी दोनों तटोंपर, विशेषकर वन क्षेत्रोंमें स्थित, छोटे-बड़े, महत्त्वपूर्ण और महत्त्व खो चुके धार्मिक, पौराणिक और ऐतिहासिक स्थानोंके दर्शन और सूक्ष्मतासे अध्ययनका भरपूर अवसर मिला। इसी कड़ीमें वर्ष १९७५ की एक सत्य घटना इस प्रकार है—

ओंकारेश्वरमें आज जहाँ बाँध है, उससे बहावके ऊपरकी तरफ नर्मदाके किनारे, एक उजाड़ गाँव काजल माता था। वहाँ गाँव या बस्ती थी, इसका एकमात्र प्रमाण नर्मदाके किनारे-स्थित एक पुराना शिवमन्दिर है, जो उस समय खण्डहर हो चुका था। कभी गाँव रहा वह पूरा क्षेत्र वृक्षों, झाड़ियोंसे घना जंगल बन चुका था। वन विभागके तकनीकी कार्य चलते रहनेके कारण मुझे प्राय: वहाँ जाना पड़ता था। शिवमन्दिरका खण्डहरनुमा प्रांगण ही हमारा कैम्पस्थल था; जहाँ मैं, मेरा स्टाफ और श्रमिक विश्राम करते, दोपहरका भोजन करते और मीटिंग करते थे। काम करनेवाले श्रमिक आसपासके गाँवोंके होते थे।

नर्मदाकी परिक्रमा करनेवाले, नर्मदामें स्नान करनेवाले, आसपासके गाँववाले इस शिव-मन्दिरमें पूजाकर प्रसाद, फल आदि चढ़ाते रहते थे। मन्दिरमें कोई पुजारी नहीं होनेसे इस चढ़ौतीको न कोई उठाता था, न खाता था। वैसे भी शंकरजीकी पिण्डीपर चढ़ा प्रसाद चण्डका भाग होनेके कारण कोई नहीं खाता।

एक बार एक लंगूर वहाँसे गुजरा। उसे मन्दिरमें चढ़ा हुआ प्रसाद दिखा। वह डरते-डरते मन्दिरके अन्दर गया और उसने उस शिवपिण्डीपर चढ़े हुए प्रसादको खाया। फिर तो वह निडर होकर मन्दिरमें आता और शंकरजीकी पिण्डीके ऊपर बैठकर चढ़े हुए प्रसाद, फूल, फलको खाता। वह प्रसाद तो खाता ही, शंकरजीकी पिण्डीको भी वानरस्वभाववश मलिन कर देता था। उसकी इस हरकतको मवेशी चरानेवालोंने, वनोंमें काम करनेवालोंने, मन्दिरमें आने-जानेवालोंने भी देखा था।

एक बार जब वह लंगूर शंकरजीकी पिण्डीपर बैठकर प्रसाद खा रहा था, मवेशी चरानेवाले वहीं पासमें छाँहमें बैठकर विश्राम कर रहे थे। तभी एक तेन्दुआ जंगलसे निकलकर नर्मदामें पानी पीनेको जा रहा था। एकाएक उसकी नजर शंकरजीकी पिण्डीपर बैठकर प्रसाद खाते लंगूरपर पड़ी। तेन्दुआ ठिठका, उसने पानी पीनेका विचार छोड़ दिया और वहीं घात लगाकर, दुबककर बैठ गया और लंगूरकी गतिविधिका अनुमान लगाने लगा, ताकि उसका शिकार कर सके। तेन्दुए और उसकी शिकारी मुद्राको देख, मवेशी चरानेवाले भयाक्रान्त होकर, साँस रोककर नजारा देखने लगे।

तेन्दुआ गाँवोंके कच्चे बने मवेशी घरोंमें घुसकर गायोंके बछड़े, बछिया, बकरी, बकरेको चोरीसे उठाकर ले जानेका आदी होता है। कुछ ही मिनटोंमें तेन्दुएने भाँप लिया कि लंगूर घिरा हुआ है और कहीं बचकर भाग नहीं सकता। वह दबे पाँव मन्दिरकी ओर बढ़ा और द्वारके करीब आकर छलाँग लगाकर लंगूरको दबोचनेकी मुद्रामें आ गया। इतनेमें लंगूरकी नजर तेन्दुएपर पड़ी, मौतको सामने देख, घबराहटमें उसने शंकरजीकी पिण्डीको बचावकी मुद्रामें दोनों हाथोंसे जकड़ लिया।

तेन्दुएने लंगूरको पकड़नेके लिये पूरी ताकतसे, ऊँची छलाँग लगायी। छलाँग लगानेमें तेन्दुएका अनुमान थोड़ा चूक गया और मन्दिरके दरवाजेकी पत्थरकी चौखटसे बड़ी जोरसे सिरके बल टकराया। इससे वह लहुलूहान होकर दरवाजेपर ही गिर गया और अचेत हो गया। उसका खूनसे सना शरीर तड़प-तड़पकर शान्त हो गया। तेन्दुएकी मौत हो गयी। महादेव भगवान् शंकरजीकी शरणमें आये लंगूरकी मौत टल गयी। चरवाहे घबराकर उठे और मददके लिये चिल्लाये। चरवाहोंके चिल्लानेकी आवाजसे डूबतेको तिनकेका सहारा मिला, लंगूर जंगलमें भाग गया। यह घटना मुझे वहाँके श्रमिकोंने बतायी, जिन्हें चरवाहोंने बताया था। —**श्रीहरि गुहा**

पढ़ो, समझो और करो

(१)

अनजान सहयात्रीकी सद्भावना

वर्ष १९९५ की बात है। मैं उन दिनों हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमलामें एसोसिएट प्रोफेसरके पदपर था। माता-पितासे मिलने आया हुआ था। वापस लौटनेके लिये मेरे पास अम्बालातकका ट्रेन रिजर्वेशन था और अम्बालासे बस पकड़कर मुझे शिमला पहुँचना था।

वापसीमें एक साहब मुझे लखनऊ स्टेशनतक छोड़ गये और मैं अम्बाला जानेवाली ट्रेनमें बैठ गया। ट्रेन चल पड़ी, तब मुझे याद आया कि मैं लखनऊमें घरसे पैसे लेना तो भूल ही गया था। अब मेरी जेबमें एक भी पैसा नहीं था और अम्बाला पहुँचकर शिमला जानेके लिये बसका टिकट खरीदना था। अगले दिन मेरी ट्रेन अम्बाला पहुँची। मेरे पास चाय पीनेके लिये भी पैसे नहीं थे। लखनऊसे चलते समय मेरी माताजीने रास्तेके लिये थोड़ा-सा खाना बाँध दिया था, तो उससे मेरा रास्ता कट गया। भूखे नहीं रहना पड़ा।

अम्बाला पहुँचकर स्टेशनसे सड़कतक अपना सामान जैसे-तैसे ढोकर लाया। मेरे पास सामान कुछ ज्यादा ही वजनदार था। अम्बाला स्टेशनसे सड़ककी दूरी कोई आधा किलोमीटर रही होगी। सड़कपर पहुँचा, तो वहाँसे पंजाब, हरियाणा और हिमाचलप्रदेशकी बसें गुजर रही थीं। शिमला जानेके लिये मैंने हिमाचल पथ परिवहन निगमकी बसपर बैठनेका निश्चय किया। यह सोचा कि उसमें शायद कोई मेरे पहचानका मिल जाय, क्योंकि मैं वहीं रहता हूँ।

मैंने हिमाचल जानेवाली एक बसको रोका और सामान लेकर बसमें चढ़ने लगा तो बस-कण्डक्टरने सामान चढ़वानेमें मेरी मदद की। फिर बस चलने लगी। थोड़े ही समयमें कण्डक्टरने टिकट बनवानेके लिये कहा। पहले तो मैंने उसे अनसुना कर दिया, परंतु जब उसने तेज आवाजमें टिकट बनवानेके लिये मुझसे कहा तो मैं बड़े सहमे एवं विनम्रताभरे स्वरमें उससे कहा—'कण्डक्टर साहब! मेरे पास पैसे नहीं हैं, मेरा मतलब कि मैं लखनऊसे आ रहा हूँ, परंतु दुर्भाग्यवश मैं चलते समय पैसा लेना ही भूल गया। मैं शिमला यूनिवर्सिटीमें ही पढ़ाता हूँ। वहाँ पहुँचकर मैं आपको पैसे दे दूँगा।' कण्डक्टरने मेरी बात सुनी और मेरे कहनेके लहजेसे उसने मेरी बातपर विश्वास कर लिया और कहने लगा—'साहब! मुझे तो आपकी बातपर भरोसा है, लेकिन यदि रास्तेमें टिकट चेकिंग हो गयी, तब तो मेरी नौकरी जानेकी नौबत आ जायगी और आपको भी उसी पहाड़ी स्थानपर उतार दिया जायगा।'

हमारी ये बातें पीछेवाली सीटपर बैठे एक व्यक्ति सुन रहे थे। अचानक वे सज्जन कण्डक्टरसे बोले—'ओ भाई! कोई बात नहीं, मैं दे देता हूँ इनका किराया।' यह सुनकर मुझे बड़ा सुकून मिला और मैं उन सज्जनके प्रति आभार व्यक्त करने लगा। फिर मैंने उनसे उनका नाम पूछा तो उन्होंने अपना नाम बतानेसे इनकार कर दिया। वह इस उपकारके बदलेमें कुछ नहीं चाहते थे।

बादमें जब बस शिमला पहुँच गयी तो मेरे सामने एक विकट समस्या यह थी कि पहाड़पर चढ़ना था और सामानका वजन भी ज्यादा था। अब कुलीके बगैर जाना नामुमकिन-सा था। कुलीको वहाँ खान कहते हैं, वे लोग घरतक सामान पहुँचाते हैं। अब समस्या यह थी कि मैं कुली तो कर लूँ, लेकिन वहाँ भी घरपर सौ रुपये नहीं पड़े थे, बहरहाल मैंने सोचा पहले चला जाय, फिर देखा जायगा और मनमें एक विश्वास भी था कि जब यहाँतक प्रभुने पहुँचा दिया है तो वे अवश्य ही कोई व्यवस्था कर देंगे। कुली करके मैं आगे बढ़ा ही था कि कुछ ही दूरी तय करनेपर मुझे एक परिचित मिल गये और मैंने उनसे सौ रुपये माँग लिये और कहा कि कल आपको दूँगा। उन्होंने 'कोई बात नहीं' कहते हुए सौ रुपये मुझे दिये और घर पहुँचकर मेरी यात्रा सुखद

सम्पन्न हो गयी। यद्यपि इस घटनाको आज पच्चीस वर्ष हो गये, परंतु बसमें बैठे अनजान सहयात्रीके सद्भावनापूर्ण सहयोगको जब याद करता हूँ तो हृदय गद्‌गद हो उठता है। —**डॉ० सन्तोष कुमार तिवारी**

(२)

किसको क्या मिला!

घटना कई वर्ष पुरानी है। मेरी बेटी विद्यालयकी बससे विद्यालय आती-जाती थी, कभी-कभी किसी कारणसे बस नहीं आती थी तो ऑटो आदि जो सार्वजनिक साधन उपलब्ध होते थे, उनसे जाना होता था। विद्यालय घरसे दूर था, कभी-कभी मैं भी उसके साथ चला जाता था।

ऐसे ही एक बार मैं उसे विद्यालय पहुँचाने गया था। वह फाटकसे अन्दर चली गयी। मैं यूँ ही थोड़ी देर विद्यालयके सामने खड़ा था। अनेक अभिभावक अपने बच्चोंको छोड़ने आ रहे थे। कोई पैदल, कोई साइकिल, स्कूटर या मोटरसाइकिलसे भी अपने बच्चोंको लेकर आ रहे थे। कुछ बच्चोंको उनके घरवाले अपनी मोटर-गाड़ीसे भी ला रहे थे, और बच्चे बड़ी शानसे अपनी गाड़ीसे बस्ता लिये उतरकर विद्यालयके फाटकके भीतर जा रहे थे।

मैंने सोचा सबका अपना-अपना भाग्य होता है, कोई पैदल आता है, कोई किसी सार्वजनिक वाहनसे, कोई स्कूटर-मोटरसाइकिलसे तो कोई अपनी मोटर-गाड़ीसे। वैसे किसीसे ईर्ष्या करना मेरे स्वभावमें नहीं है, किंतु फिर भी मोटर-गाड़ीवाले बच्चोंको देखकर मनमें कुछ भाव तो आ ही रहे थे। इसी बीच वहाँ एक बड़ी-सी अत्यन्त शानदार मोटर-गाड़ी आयी। सभी लोगोंकी दृष्टि उधर चली गयी। गाड़ी विद्यालयके फाटकके ठीक सामने रुकी। निश्चय ही किसी प्रभावशाली व्यक्तिकी गाड़ी थी। गाड़ी रुकते ही गाड़ीमेंसे एक नौकर या ड्राइवरने उतरकर गाड़ीका दरवाजा खोला। मैं कारमें बैठे बच्चेके भाग्यको सोच रहा था, जिसके ये ठाट-बाट थे। फिर बच्चेके उतरनेसे पहले नौकर बच्चेका बस्ता लेकर कारसे बाहर आया। सच कहूँ तो इतना सब देख मैं भी अपनेको उस बच्चेके भाग्यसे ईर्ष्या करनेसे नहीं रोक सका। इसके पश्चात् नौकरने बच्चेके बाहर आनेके लिये गाड़ीका दरवाजा बहुत ध्यानसे खोला। परंतु यह क्या! दरवाजेमेंसे दो वैसाखियाँ बाहर निकलीं, उसके बाद एक विकलांग छात्रा, जो बड़ी कठिनाईसे वैसाखियोंपर अपना शरीर सँभालकर किसी तरह विद्यालयके फाटकतक पहुँची, वहाँपर साथ चल रहे नौकरने उसका बस्ता उसे पकड़ा दिया। वह कैसे उसे उठाकर भीतर जा पायी होगी, भगवान् जाने!

यह दृश्य देखकर मैं अवाक् रह गया। कुछ क्षण पूर्व मेरे मनमें जो भाव आ रहे थे, वे सब पता नहीं कहाँ चले गये थे। मुझे अपनी सोचपर ग्लानि हो रही थी। अपनी उन्नतिके लिये हमें उचित प्रयास अवश्य करने चाहिये, किंतु कभी किसीकी समृद्धिसे ईर्ष्या नहीं करनी चाहिये। पता नहीं, किसके पास क्या है, क्या नहीं है।

(३)

सच्चा प्रायश्चित्त

नर्मदा नदीके किनारेपर बसे रामपुर गाँवमें रामदास नामक एक सम्पन्न कृषक अपने दो पुत्रोंके साथ रहता था। उसकी पत्नीका देहान्त कई वर्ष पूर्व हो गया था, परंतु अपने बच्चोंकी परवरिशमें कोई बाधा न आये, इसलिये उसने दूसरा विवाह नहीं किया था। उसके दोनों पुत्रोंके स्वभाव एक-दूसरेसे विपरीत थे। उसका बड़ा बेटा लखन गलत प्रवृत्ति रखते हुए धनका बहुत लोभी था, परंतु उसका छोटा पुत्र विवेक बहुत ही उदार, प्रसन्नचित्त एवं दूसरोंके कष्टोंके निवारणमें मददगार रहता था। वह कुशल तैराक भी था एवं तैराकीके शौकमें काफी समय देता था। वह अपने पिताके कामोंमें बहुत कम रुचि रखता था। वह सीधा, सरल एवं नेकदिल इंसान था, साथ ही उसे अपने बड़े भाईपर गहन श्रद्धा एवं पूर्ण विश्वास था।

रामदासने अपनी वृद्धावस्थाको देखते हुए अपनी वसीयत बनाकर अपने सहयोगी मित्रके पास रखवा दी

थी और उसे रजिस्टर्ड करानेका निर्देश भी दिया था, परंतु ऐसा होनेके पूर्व ही दुर्भाग्यवश हृदयाघातके कारण उनकी मृत्यु हो गयी। उसके बड़े बेटे लखनने हालातका फायदा उठाकर अपने पिताके मित्रको येन-केन-प्रकारेण अपनी ओर मिलाकर वह वसीयत हथिया ली एवं अपने पिताके हस्ताक्षरयुक्त कोरे कागजपर नयी वसीयत बनाकर खेतीकी पूरी जमीन एवं अन्य सम्पत्तियाँ, गहने, नकदी आदि अपने नाम लिखवाकर उन्हें हथिया लिया और विवेकको सम्पत्तिमें उसके वाजिब हकसे बेदखल कर दिया। विवेकके हितैषियोंने उसे न्यायालय जानेकी सलाह दी, परंतु उसे ईश्वरपर गहरी श्रद्धा एवं दृढ़ विश्वास था और वह प्रभुसे न्याय करनेकी प्रार्थना करके चुपचाप रह गया।

विवेक अपने सीमित साधनोंमें ही अपना गुजर-बसर किसी प्रकार कर रहा था। इस घटनाके बाद दोनों भाइयोंमें पूर्णतः सम्बन्ध-विच्छेद हो गये और मन-मुटाव इतना बढ़ गया कि लखनने अपने विवाहमें भी विवेकको नहीं बुलाया। कुछ वर्षों बाद लखनको पुत्र-रत्नकी प्राप्ति हुई, परंतु सभी समारोहोंमें विवेककी उपेक्षा ही की गयी। वक्त बीत रहा था और लखनका बेटा दो वर्षका हो गया था।

एक दिन वह अपनी माँके साथ नावसे नदी पार कर रहा था, तभी न जाने कैसे हादसा हुआ और बच्चा छिटककर नदीमें गिर गया। विवेक इस घटनाको पासके ही टापूसे देख रहा था। उसका मन अपने अपमानको याद करके सहायता करनेसे रोक रहा था, परंतु इंसानियतका तकाजा कर्तव्यकी प्रेरणा दे रहा था। इसी मानसिक अन्तर्द्वन्द्वके बीच विवेकने देखा कि वह अबोध बालक लगभग डूबनेकी स्थितिमें आ गया है और उसके दोनों हाथ पानीके ऊपर दिख रहे हैं। यह हृदयविदारक दृश्य देखकर वह अपने-आपको रोक न सका और बिजलीकी गतिसे पानीमें कूदकर तैरते हुए उस बालकके पास पहुँच गया। अपनी तैराकीके अनुभवोंसे उसे बचाकर किनारेकी ओर ले आया। इस दुर्घटनाकी खबर आगकी तरह सारे गाँवमें फैल गयी और लखन बदहवास-सा नंगे पैर दौड़ता हुआ नदीके पास आया।

वहाँपर उसने देखा कि काफी लोग विवेकको घेरकर उसके साहस, त्वरित निर्णय एवं भावुकताकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर रहे हैं। लखनको देखकर विवेक बच्चेको हाथमें उठाकर उसे देनेके लिये उसके पास आया। यह दृश्य देखकर लखन स्तब्ध रह गया और उसके मुखसे ये शब्द निकल पड़े कि 'आज मैं याचक हूँ और तुम दाता हो'। उसकी आँखें सजल हो गयीं और वह फूट-फूटकर रो पड़ा, मानो पश्चात्तापके आँसुओंसे मनका सारा मैल झर रहा हो। वह रुँधे गलेसे कह रहा था—'मैंने तेरे साथ हमेशा अन्याय किया है। मेरी धन-लोलुपता एवं लोभी स्वभावने मुझे अधर्मके पथपर ले जाकर भ्रष्ट कर दिया था। तुमने अपने अपमानको पीकर और अपनी जान जोखिममें डालकर मेरे बच्चेकी रक्षा की है। मुझे मेरी गलतियोंके लिये माफ कर दो और मेरे साथ घर चलो।'

विवेक चुपचाप खड़ा सोच रहा था, तभी वह बालक 'चाचा-चाचा' कहकर उसकी गोदमें आनेके लिये मचलने लगा। ऐसे भावपूर्ण दृश्यने लखन और विवेक दोनोंके दिलोंको एक कर दिया। लखनने विवेकको घर ले जाकर उसे उसकी सम्पत्तिका हिस्सा देनेके कागजात तुरंत बनवाये एवं इसके साथ ही गहने, नकदी तथा अन्य चल सम्पत्तियोंमें जो भी वाजिब हिस्सा विवेकका था, वह उसे दे दिया। साथ ही यह भी कहा कि तुम्हारा अधिकार तुम्हें देकर भी मैं अपने पापोंसे मुक्त नहीं हो सकता। यह सुनकर विवेकने अपने बड़े भाईके सम्मुख हाथ जोड़कर कहा कि भाई! अब मेरे मनमें किसी भी प्रकारका दुर्भाव नहीं है। आप भी अपने नकारात्मक विचारोंको हृदयसे निकालकर सकारात्मक शुरुआत करें। यही हम दोनोंके लिये जीवनका सच्चा प्रायश्चित्त होगा।—**राजेश माहेश्वरी**

मनन करने योग्य

सच्ची निष्ठा

पहले समयकी बात है। सिन्धु देशकी पल्लीनगरीमें कल्याण नामका एक धनी सेठ रहता था। उसकी पत्नीका नाम इन्दुमती था। विवाह होनेके बहुत दिनोंके बाद उनके पुत्र हुआ; उसके जन्मोत्सवमें उन लोगोंने अनेक दान-पुण्य किये, राग-रंग और आमोद-प्रमोदमें पर्याप्त धन व्यय किया। उसका नाम रखा गया बल्लाल; वह उन दोनोंके नयनोंका तारा था।

* * *

'कितना मनोरम वन है!' सरोवरमें अपने समवयस्क बालगोपालोंके साथ स्नान करते हुए बल्लालने अपने कथनका समर्थन कराना चाहा। वह उन्हें नित्य अपने साथ लेकर पल्लीसे थोड़ी दूर स्थित वनमें आकर सैर-सपाटा किया करता था। बालकोंने उसकी 'हाँ-में-हाँ' मिलायी।

'चलो, हमलोग भगवान् विघ्नेश्वर श्रीगणेश देवताकी पूजा करें। उनकी कृपासे समस्त संकट मिट जाते हैं।' बल्लालने सरोवरके किनारे एक छोटे-से पत्थरको श्रीगणेशका श्रीविग्रह मानकर बालकोंको पूजा करनेकी प्रेरणा दी। उसने श्रीगणेश-महिमाके सम्बन्धमें अनेक बातें घरपर सुनी थीं।

लता-पत्र एकत्रकर बालकोंने एक मण्डप बना लिया; उसमें तथाकथित श्रीगणेश-विग्रहकी स्थापना करके मानसिक पूजा—फूल, धूप, दीप, नैवेद्य, फल, ताम्बूल, दक्षिणा आदिसे—आरम्भ की। उनमेंसे कई एक पण्डितोंका स्वाँग बनाकर पुराणों और शास्त्रोंकी चर्चा करने लगे। इस प्रकार श्रीगणेशजीकी उपासनामें उनका मन लग गया। वे दोपहरको भोजन करने घर नहीं आते थे, इसलिये दुबले हो गये। उनके पिताजीने कल्याण सेठसे कहा कि यदि बल्लालका वनमें जाना नहीं रोक दिया जायगा तो हमलोग राजासे शिकायत करके आपको पल्लीनगरीसे बाहर निकलवा देंगे। कल्याणका मन चिन्तित हो उठा।

'ये तो नकली गणेश हैं, बच्चो! असली गणेशजी तो हृदयमें रहते हैं।' कल्याणने हाथके डंडेसे बल्लालको सावधान किया।

'पिताजी, आप जो कुछ भी कह रहे हैं, वह आपकी दृष्टिमें नितान्त सच है; पर मेरी निष्ठा तो श्रीगणेशजीके इसी श्रीविग्रहमें है। मैं पूजा नहीं छोड़ सकता।' बल्लालका इतना कहना था कि सेठने उसे मारना आरम्भ किया; अन्य बालक भाग निकले। सेठने मण्डप तोड़ डाला; बल्लालको एक मोटे-से रस्सेसे पेड़के तनेमें बाँध दिया।

'यदि इस विग्रहमें श्रीगणेशजी होंगे तो तुम्हारा बन्धन खुल जायगा। इस निर्जन वनमें वे ही तुम्हारी रक्षा करेंगे।' कल्याणने घरका रास्ता लिया।

* * *

'निस्सन्देह श्रीगणेशजी ही मेरे माता-पिता हैं। वे दयामय ही मेरी रक्षा करेंगे। वे विघ्न-विदारक, सिद्धिदायक, सर्वसमर्थ हैं। मैं उनकी शरणमें अभय हूँ।' बल्लालकी निष्ठा बोल उठी; वह हृदयमें करुणाका वेग समेटकर निर्निमेष दृष्टिसे श्रीगणेशके विग्रहको देखने लगा।

'मेरा तन भले ही बाँधा जाय, पर मेरा मन स्वतन्त्र है; मैं अपना प्राण श्रीगणेशके चरणोंमें अर्पित करूँगा।' बल्लालके

इस निश्चयसे पाषाणसे श्रीगणेशजी प्रकट हो गये।

'तुम्हारी निष्ठा धन्य है, वत्स!' श्रीगणेशने उसका आलिंगन किया। वह बन्धनमुक्त हो गया। उसने अपने आराध्यकी जी भरकर स्तुति की। गणेशजीने अभय दान दिया, और अन्तर्धान हो गये। [**गणेशपुराण**]

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित—देवोपासनाके महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

कोड	पुस्तक-नाम	मू०₹
	भगवान् श्रीगणपति	
657	श्रीगणेश-अङ्क	१८०
2024	श्रीगणेशस्तोत्ररत्नाकर	४०
	भगवान् शिव	
2223, 2224	श्रीशिवमहापुराण-सटीक दो खण्डोंमें सेट	६५०
1468	सं० शिवपुराण (विशिष्ट सं०)	३००
789	सं० शिवपुराण	२५०
1985	लिंगमहापुराण-सटीक	२५०
2020	शिवमहापुराणमूलमात्रम्	२७५
1417	शिवस्तोत्ररत्नाकर	४०
1627	रुद्राष्टाध्यायी (सानुवाद)	३५
1954	शिव-स्मरण	१०
563	शिवमहिम्नःस्तोत्र	५
228	शिवचालीसा (लघु आकारमें भी)	५
230	अमोघ शिवकवच	४
	भगवान् विष्णु	
48	श्रीविष्णुपुराण (सटीक)	१७०
1364	श्रीविष्णुपुराण (केवल हिन्दी)	१२०
819	श्रीविष्णुसहस्रनामस्तोत्रम् (शांकरभाष्य)	४०
1801	,, (हिन्दी-अनुवादसहित)	१०
225	गजेन्द्रमोक्ष	४
229	श्रीनारायणकवच	४
1367	श्रीसत्यनारायण-व्रतकथा	१५
	भगवान् श्रीकृष्ण	
1951, 1952	भागवतमहापुराण-सटीक, बेड़िआ (दो खण्डोंमें सेट)	९००
571	श्रीकृष्णलीला-चिन्तन	२००
517	गर्ग-संहिता	१६५
49	श्रीराधा-माधव-चिन्तन	१००
50	पद-रत्नाकर	११०
1927	जीवन-संजीवनी	४५
555	श्रीकृष्णमाधुरी	४०
62	श्रीकृष्णबालमाधुरी	३५
547	विरह-पदावली	३०
864	अनुराग-पदावली	४०
1862	श्रीगोपालसहस्रनामस्तोत्र (हिन्दी-अनुवाद)	१७
1748	संतानगोपालस्तोत्र	८
	भगवान् श्रीराम	
1095	श्रीरामचरितमानस-सटीक ग्रन्थाकार, विशिष्ट संस्करण	३६०
574	योगवासिष्ठ	१८०
103	मानस-रहस्य-सजिल्द	७०
231	रामरक्षास्तोत्र	४
	श्रीहनुमान्‌जी	
42	हनुमान-अङ्क—परिशिष्टसहित	१५०
185	भक्तराज हनुमान्	१०
112	हनुमान-बाहुक	५
	महाशक्ति भगवती	
1897, 1898	श्रीमद्देवीभागवतमहापुराण-सटीक दो खण्डोंमें सेट	५००
1133	सं० देवीभागवत	३००
41	शक्ति-अङ्क	२००
1774	श्रीदेवीस्तोत्ररत्नाकर	४५
2003	शक्तिपीठदर्शन	२०
	भगवान् सूर्य	
791	सूर्याङ्क	१५०
211	आदित्यहृदयस्तोत्र	५

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित गो-साहित्य

[२२ नवम्बर (दिन—रविवार) को गोपाष्टमीव्रत है।]

गो-अङ्क (कोड 1773)—इस विशेषाङ्कमें सुप्रसिद्ध संत-महात्माओं एवं विद्वानोंके द्वारा प्रस्तुत गायकी महत्ता एवं उपयोगितापर उत्कृष्ट लेखोंके साथ-साथ गायके आर्थिक, वैज्ञानिक एवं धार्मिक महत्त्व तथा गोपालन एवं संरक्षणकी विधियोंका सुन्दर प्रतिपादन किया गया है। मूल्य ₹ २००

गोसेवा-अङ्क (कोड 653)—इस विशेषाङ्कमें गौसे सम्बन्धित अनेक आध्यात्मिक और तात्त्विक निबन्धोंके साथ गौका विश्वरूप, गोसेवाका स्वरूप, गोपालन एवं गोसंवर्धनकी मुख्य विधाएँ तथा गोदान आदि उपयोगी विषयोंका संग्रह हुआ है। मूल्य ₹ १३०

गोसेवाके चमत्कार (कोड 651)—गायोंकी महिमा अपार है। प्राचीनसे लेकर अर्वाचीन साहित्यतक गो-महिमासे भरे पड़े हैं। मूल्य ₹ २० **(कोड 365)** तमिलमें भी उपलब्ध।

किसान और गाय (कोड 821)—किसानोंके लिये व्यावहारिक शिक्षा और गोपालनकी महत्ताका एक सुन्दर विवेचन। मूल्य ₹ ५ **(कोड 1547)** तेलुगुमें भी उपलब्ध।

गोरक्षा एवं गोसंवर्धन (कोड 1922)—प्रस्तुत पुस्तकमें गोरक्षा एवं गोसंवर्धनके शास्त्रीय आलोकमें विलक्षण व्याख्या की गयी है। मूल्य ₹ १०

प्र० ति० 20-09-2020
रजि० समाचारपत्र—रजि०नं० 2308/57 पंजीकृत संख्या—NP/GR–13/2020–2022
LICENSED TO POST WITHOUT PRE-PAYMENT | LICENCE No. WPP/GR–03/2020–2022

गीताप्रेससे प्रकाशित बाल-साहित्य पढ़ें और पढ़ावें

कोड	पुस्तक-नाम		मू० ₹
	बालकोपयोगी पुस्तकें रंगीन चित्रोंके साथ		
1690	बालकके गुण	ग्रन्थाकार	४०
1689	आओ बच्चों तुम्हें बतायें	,,	३०
1692	बालककी दिनचर्या	,,	२५
1693	बालकोंकी सीख	,,	२५
1694	बालकके आचरण	,,	३०
1691	बालकोंकी बातें	पुस्तकाकार	२५
1437	वीर बालक	,,	२०
1451	गुरु और माता-पिताके भक्त बालक	,,	१५
1450	सच्चे और ईमानदार बालक	,,	१५
1449	दयालु और परोपकारी बालक-बालिकाएँ	पुस्तकाकार	१५
1448	वीर बालिकाएँ	,,	१५
	सचित्र ग्रन्थाकार कहानियाँ		
2079	शिक्षाप्रद चरितावली		२५
2080	शिक्षाप्रद बाल-कहानियाँ		३०
2081	कल्याणकारी बाल-कहानियाँ		३०
2067	आदर्श बाल-कहानियाँ		३०
2071	प्रेरक बाल-कहानियाँ		३०
2070	बालकोपयोगी कहानियाँ		३०
2072	प्राचीन बाल-कहानियाँ		३०
2068	आदर्श बाल कथाएँ		३०

बालपोथीके सभी संस्करण उपलब्ध

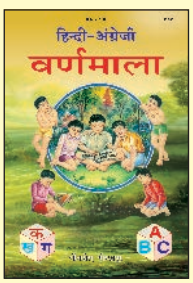

हिन्दी-अंग्रेजी वर्णमाला, रंगीन (कोड 1992) ग्रन्थाकार—प्रस्तुत पुस्तकमें हिन्दी-अंग्रेजी वर्णमाला एवं प्रत्येक वर्णमालासे सम्बन्धित रंगीन चित्र दिये गये हैं। मूल्य ₹३०, (कोड 2208) गुजरातीमें भी।

कोड	पुस्तकका नाम	मूल्य ₹
125	**हिन्दी-बालपोथी** (शिशुपाठ) रंगीन (भाग-१)	७
212	**हिन्दी-बालपोथी** (भाग-२)	६
684	**हिन्दी-बालपोथी** (भाग-३)	६
764	**हिन्दी-बालपोथी** (भाग-४)	१५
765	**हिन्दी-बालपोथी** (भाग-५)	१५

गीताप्रेससे प्रकाशित—करपात्रीजी महाराजकी पुस्तकें

भक्तिसुधा (कोड 1982)—इसके प्रथम भागमें श्रीकृष्णजन्म, बाललीला, वेणुगीत, चीरहरण, रासलीला आदिका विशद विवेचन है। द्वितीय भागमें देवोपासना तत्त्व, गायत्री-तत्त्व, शक्तिका स्वरूप, शक्तिपीठ-रहस्य, रामजन्म-रहस्य आदिका तात्त्विक विवेचन है। इसके तृतीय भागमें भगवत्प्राप्ति, नामरूपकी उपयोगिता, मानसी आराधना, भगवत्कथामृत आदि विविध विषयोंपर मार्मिक विवेचन है एवं चतुर्थ भागमें वेदान्तरससार एवं सर्वसिद्धान्त-समन्वय है। मूल्य ₹२००

मार्क्सवाद और रामराज्य—सजिल्द, (कोड 698) पुस्तकाकार—इसमें स्वामीजीने पाश्चात्त्य दार्शनिकों, राजनीतिज्ञोंकी जीवनी, उनका समय, मत-निरूपण, भारतीय ऋषियोंसे उनकी तुलना, विकासवादका खण्डन, ईश्वरवादका मण्डन, मार्क्सवादका प्रबल शास्त्रीय आलोकमें विरोध तथा न्याय और वेदान्तके सिद्धान्तका विस्तारसे प्रतिपादन किया है। यह राजनीति और दर्शनके विश्वकोशके रूपमें आदरणीय और मननीय ग्रन्थ है। मूल्य ₹१८०

booksales@gitapress.org थोक पुस्तकोंसे सम्बन्धित सन्देश भेजें।
gitapress.org सूची-पत्र एवं पुस्तकोंका विवरण पढ़ें।

कूरियर/डाकसे मँगवानेके लिये गीताप्रेस, गोरखपुर—273005
book.gitapress.org gitapressbookshop.in

कल्याणके मासिक अङ्क kalyan-gitapress.org पर नि:शुल्क पढ़ सकते हैं।